प्रश्न पत्र – 6 (MHIN 202)
हिन्दी साहित्य का इतिहास (आधुनिक काल)

समय : तीन घण्टे **पूर्णांकः 80 (पत्राचार एवं रेगुलर परीक्षार्थी)** **पूर्णांक : 100 (प्राईवेट परीक्षार्थी)**

पाठ्य विषय
खंड – 1

आधुनिक काल की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सन् 1857 की राजक्रांति और पुनर्जागरण।

भारतेंदु युग प्रमुख साहित्यकार, रचनाएँ और साहित्यिक विशेषताएँ।

खंड – 2

द्विवेदी युग : प्रमुख साहित्यकार, रचनाएँ और साहित्यिक विशेषताएँ।

हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना का अग्रिम विकास – छायावादी काव्य: प्रमुख साहित्यकार, रचनाएँ और साहित्यिक विशेषताएँ।

खंड – 3

उत्तरछायावादी काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ – प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, नवगीत, समकालीन कविता। प्रमुख साहित्यकार, रचनाएँ और साहित्यिक विशेषताएँ।

खंड – 4

हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाओं (कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, रिपोतार्ज आदि) का विकास।हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास।

प्राश्निक के लिए निर्देश

1. निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर प्रत्येक खंड में से दो आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से एक का उत्तर देना अनिवार्य होगा।
2. सभी खंडों में से बारह अति लघूत्तरीय प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से दस के उत्तर देने होंगे।

अंक विभाजन :

चार आलोचनात्मक प्रश्न : 4X20= 80 अंक,

अतिलघूत्तरी प्रश्न 10X2=20 अंक

(प्राईवेट परीक्षार्थी) कुल अंक : 100

चार आलोचनात्मक प्रश्न 4X15=60 अंक,

अतिलघूत्तरी प्रश्न 10X2=20 अंक (रेगुलर एवं पत्राचार परीक्षार्थी) कुल अंक 80

*****

अनुशंसित पुस्तकें :

1. डॉ. नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण, दिल्ली।
3. डॉ. शिव कुमार, हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन, मैक्लिन दिल्ली।
4. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
5. रामसजन पाण्डेय, (सं.) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी पब्लिशिंग हाऊस, रोहतक।
6. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य इतिहास, का.ना.प्र.स. वाराणसी।
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना।
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल दिल्ली।
9. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भारतेन्दु भवन इलाहाबाद।
10. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, वाणी वितान, वाराणसी।
11. रामसजन पाण्डेय, (सं.) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी पब्लिशिंग हाऊस, रोहतक।
12. तारक नाथ बाली, हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
13. श्यामसुन्दर पास, हिंदी साहित्य, इंडियन लिमिटेड, प्रभाग।
14. डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास और समस्या, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
15. डॉ. हुकुम चंद राजपाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास पब्लिशिंग हाउस, प्रा. लि., नई दिल्ली।

*****

इकाई – 1
आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एवं नवजागरण

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एवं नवजागरण

- आधुनिकता
- आधुनिकता का आरंभ
- हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरम्भ

स्वयं आकलन प्रश्न – 1

1.4 आधुनिककालीन परिस्थितियाँ और नवजागरण

- राजनीतिक परिस्थितियाँ
- सामाजिक परिस्थितियाँ
- धार्मिक परिस्थितियाँ
- आर्थिक परिस्थितियाँ
- सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
- साहित्य पर प्रभाव
- नवजागरणकालीन साहित्य की विशेषताएँ

स्वयं आकलन प्रश्न – 2

1.5 सारांश

1.6 कठिन शब्दावली

1.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भित पुस्तकें

1.9 सात्रिक प्रश्न

1.1 भूमिका

पिछली कक्षाओं में हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत आदिकाल भक्तिकाल और रीतिकाल की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों के बारे में विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हम आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एथ नवजागरण, हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ और आधुनिक कालीन परिस्थितियां और नवजागरण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इकाई एक का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. आधुनिककाल की पृष्ठभूमि क्या है?
2. नवजागरण क्या है?
3. आधुनिकता का आरम्भ कब से माना जाता है?
4. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ कब हुआ?
5. आधुनिककालीन परिस्थितियाँ क्या हैं?

1.3 आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एवं नवजागरण

● आधुनिककता – आधुनिक शब्द 'अधुना' से बना है, जिसका अर्थ है– नया। सामान्यत: 'आधुनिक' शब्द कालावधि सूचक शब्द है। समयपरक अर्थ में शब्द अतीत से भिन्न नवीनता का बोध कराता है, जिसका संबंध वर्तमान से होता है। विचारपरक अर्थ में इस शब्द का अभिप्राय जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण, नई सोच, नए जीवन दर्शन से है। रूढ़ जड़, जीर्ण–शीर्ण प्रतिगामी, पिछड़े जीवन मूल्यों को छोड़कर विवेकपूर्ण नए जीवन मूल्यों को अपनाना अथवा परम्परा को गतिशील तत्व स्वीकार कर उसे जीवन से, आज की मांग से जोड़ना ही आधुनिकता है। या यूँ कहें कि जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक परिस्थिति, विचार और विश्वास आदि के पुनर्मूल्यों का अर्थबोध 'आधुनिक' शब्द से निहित है। अत: कह सकते हैं कि अतीत से भिन्न युग चेतना से उद्‌भुत नये जीवन मूल्यों की पहचान और उनको ग्रहण कर चलना आधुनिकता है।

● आधुनिकता का आरंभ – जीवन जगत में जब विज्ञान के विकास के साथ जीवन के प्रति वैज्ञानिक और बौद्धिक दृष्टिकोण, आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता की प्रधानता, नैतिकता के स्थान पर यथार्थ का आगमन हुआ। जब धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अर्थ और काम की प्रबल विचारधारा उत्पन्न हुई। तब पुराने विचारों, मूल्यों, विश्वासों के स्थान नए भावबोध, विचारों, विश्वासों और मूल्यों ने लिया तभी से आधुनिकता का पदार्पण हो गया।

● हिंदी साहित्य का आधुनिक काल का प्रारंभ – हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारंभ रीतिकालीन युग के बाद, सन् 19वीं शताब्दी से माना जाता है। वस्तुत: साहित्य में आधुनिकता की आरंभिक सीमा का निश्चय करना कठिन होता है क्योंकि भावों और विचारों से परिवर्तन का क्रम एक झटके से न होकर शनै–शनै होता है। भारतवर्ष में अंग्रेजों के साथ संपर्क तो बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, किंतु साहित्य पर इस संपर्क का प्रभाव बहुत बाद पड़ा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन् 1843 से हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आविर्भाव माना है। कुछ आलोचकों ने स्वतन्त्रता संग्राम के आधार पर सन् 1857 से स्वीकारा। मिश्रवधुओं ने आधुनिक काल को 'परिवर्तन काल' नाम दिया और सन् 1833 से 1868 तक सीमाअवधि तय की। बाद में सन् 1869 से बाद के साहित्य काल को 'वर्तमान काल' का नाम भी दे दिया। ग्रियर्सन ने भी 'कम्पनी के शासन में हिंदुस्तान' तथा 'विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान' ये दो भाग किये थे। डॉ. बच्चन सिंह तथा नगेन्द्र ने इसका आरंभ 1857 ई. माना।

डॉ. बच्चन सिंह का कहना है कि 1857 में सामंती शक्तियों की सपफलता की सारी संभावनाएं समाप्त हो गई और देश के प्रबुद्ध समाज ने नये सिरे से सोचना आरंभ किया, अंग्रेजों द्वारा इसी समय से आधुनीकीकरण की नई प्रक्रियाएं आरंभ हुई। डॉ. नगेन्द्र 1857 को राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का समय मानकर यहीं से साहित्य में भी नये स्वरों को उभारते हुए देते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार वस्तुत: साहित्य में आधुनिकता का वाहन प्रेस है और उनके प्रचार के सहायक हैं– यातायात के समुन्नम साधना प्रेस होने से पुस्तकों और गद्य का विस्तार हुआ जिससे प्रजातांत्रिक परिवर्तन आया।

आचार्य शुक्ल ने इस युग में गद्य के आविर्भाव एवं विकास को सर्वप्रमुख साहित्यिक घटना मानते हुए इसे 'गद्यकाल' की संज्ञा भी दी है। परन्तु आधुनिक काल को केवल 'गद्यकाल' कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक काल में गद्य का पर्याप्त विकास हुआ है, परन्तु पद्य (कविता) के विकास में भी यह युग न तो सहवर्ती गद्य से ही पीछे है और न ही किसी पूर्ववर्ती युग के काव्य से भारतेन्दु–युग से लेकर आज तक हिन्दी कविता सशक्त, व्यापक एवं प्रभावपूर्ण रूप से विकसित हुई है। वस्तुत: गद्य और पद्य दोनों दृष्टियों से हिन्दी के आधुनिक काल का साहित्य सम्पन्न एवं समृद्ध है। अत: इस आधार पर इस युग का नामकरण संगत प्रतीत नहीं होता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने इसे 'आधुनिक काल' नाम ही दिया है। परन्तु आज कई समीक्षकों को आधुनिक काल नाम भी असंगत जान पड़ता है।

आचार्य शुक्ल द्वारा निर्देशित तथा परवर्ती दो भागों में बांट लेना समीचीन होगा (1) स्वातंत्र्य–संघर्ष युग तथा (2) स्वातन्त्र्योत्तर युग। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने भारत पर अंग्रेजी अथवा ब्रिटिश शासन होने के कारण इस काल का नाम 'ब्रिटिश काल' सुझाया है, जो मान्य नहीं हो सका। इस दृष्टि से मध्ययुगीन साहित्य को 'मुगलकाल' नाम देना पड़ेगा। ब्रिटिश काल अथवा 'मुगलकाल' हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों के परिचायक नहीं हैं। ये भारतवर्ष के इतिहास के काल–विभाग तो हो सकते हैं। हिंदी साहित्य के नहीं। फलत: सन् 1850 से अद्यावधि काल को सामान्यत: आधुनिक काल कहना उपयुक्त है।

डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि ''आधुनिकता एक मिश्र- धारणा है।'' शब्दार्थ की दृष्टि से आधुनिकत्ता शब्द वर्तमान युग का बोध कराने के साथ उसे प्राचीन से अलग करके एक नये काल खण्ड के रूप में प्रस्तुत करता है सो भये जीवन-दर्शन ष्पुरातन का त्याग संशोधन तथा आदि विचारपरक अर्थ भी इसमें निहित है। अत: कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक और भौतिकतावादी दृष्टिकोण, जीवन के सम्पूर्ण परिवेश के यथार्थ चित्रण के साथ अपनी रचना-यात्रा में नए विश्वास और नए साहित्यिक मूल्यों को आगे बढ़ाने वाला यह युग अपने पूर्ववर्ती युगों से भिन्न है। इसलिए प्रत्येक दृष्टि से इसे आधुनिक काल नाम देना सर्वथा सार्थक है। अत: हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल के काव्य का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है -

भारतेन्दुयुगीन काव्य (सन् 1857-1900 तक)

द्विवेदीयुगीन काव्य (सन् 1901-1920 तक)

छायावादी काव्य (सन् 1921-1935 तक)

प्रगतियादी काव्य (सन् 1937-1942 तक)

प्रयोगवादी काव्य (सन 1942-1951 तक)

नई कविता (सन् 1951-1960 तक)

साठोत्तरी कविता (सन् 1961-अब तक)

इसी प्रकार गद्य के विकास और काल विभाजन को समझने के लिए विधा विशेष में प्रख्यात 'मील के पत्थर' के आधार पर नामकरण दिया गया है। जो इस प्रकार है। उपन्यास के विकास के आधार पर प्रेमचंद पूर्व उपन्यास, प्रेमचंदयुगीन उपन्यास, प्रेमचंदोत्तर उपन्यास।

नाटक के विकास के आधार पर प्रसाद पूर्व नाटक, प्रसादयुगीन नाटक, प्रसादोतर नाटक।

आलोचना के विकास के आधार पर-शुक्ल पूर्व आलोचना, शुक्लयुगीन आलोचना, शुक्लोत्तर आलोचना।

इसी प्रकार अन्य विधाओं का भी विकास देखा जा सकता है।

स्वय्र आकलन प्रश्न-1

प्र.-1 हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ कब से माना जाता है ?

प्र.-2 नवजागरण का अर्थ क्या है ?

1.4 आधुनिककालीन परिस्थितियां और नवजागरण

साहित्य रचना अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होती है। लक्ष्य स्वान्त सुखाय हो या लोकरंजन, व्यष्टि और समष्टिगत जीवन की जितनी भी दशाएं और स्थितियां आदि होती हैं वे सब साहित्यिक अभिव्यक्ति उपादान बनती हैं। युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य परिस्थितियाँ भी उसे अछूता नहीं रहने देतीं। परिस्थितियों के बदलने के साथ जन-जीवन में भावात्मक और चिंतनात्मक परिवर्तन आता है। यह परिवर्तन साहित्य को प्रभावित करता है। अतएव साहित्य का सर्जन और विकास विविध प्रेरणाओं और परिस्थितियों के द्वारा होता है। युगानुरूप बदलती प्रवृत्तियां, अभिरुचियां और संवेदनायें ही साहित्य में अभिव्यक्ति पाती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य इसे स्पष्ट करता है।

भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में उन्नीसवीं सदी का मध्यान्तर एक युगान्तकारी समय रहा है। राजनीतिक दृष्टि से फ्रेंच और रशियन कांति से उत्पन्न भौतिकवादी महत्त्वाकांक्षा, वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से प्रकृति पर मानव का अधिकार, यातायात एवं दूर-संचार साधनों के विस्तार के साथ सिकुड़ती सिमटती धरा, देशकाल पर मनुष्य की विजय और शैक्षणिक चेतना के प्रसार ने सारे संसार को रुढ़ियों और अन्धविश्वासों के अन्धियारे गलियारों से निकाल कर नव चेतना का व्यापक क्षितिज प्रदान किया। इस विश्वव्यापी चेतना से भारत भी अप्रभावित नहीं रह सका। यहां भी नव-चेतना के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। एक सर्वांगीण नव-चेतना अथवा नवजागरण काल का आरंभ हुआ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल भारतवर्ष में तुर्क, अपफगान एवं मुगल राज्य की स्थापना, उत्थान एवं पतन का युग था, और आधुनिक काल (सन् 1850 से अद्यावधि) ब्रिटिश शासन की प्रतिष्ठा एवं समाप्ति का युग है एवं स्वातन्त्र्योतर भारत की नवचेतना भी आधुनिक युग के साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार स्वाधीनता के संघर्ष तथा स्वाधीनता-प्राप्ति के अनन्तर देश की समस्याओं तथा परिवेश का चित्रण आधुनिक काल के साहित्य में देखा जा सकता है। आधुनिक युग का साहित्य आदिकाल एवं मध्यकाल (भक्ति एवं रीतिकाल) के काव्य में सर्वथा भिन्न प्रवृतियों का साहित्य है। पद्य के साथ गद्य का विकास इस युग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस युग में जिन नयी काव्य-प्रवृत्तियों का उन्मेष हुआ, उनके उद्भव समसामयिक परिवेश अथवा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों का अपना योगदान है। अत: आधुनिक काल के साहित्य के अध्ययन से पूर्व संक्षेप में इस युग के परिवेश का परिचय यहां प्रस्तुत है।

• **राजनीतिक परिस्थितियाँ –** आधुनिक काल के आरम्भ के साथ अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन सारे भारत में फैल चुका था। इस कम्पनी का प्रभुत्व ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों इसके अधिकारियों के भारतवासियों पर अत्याचार भी बढ़ते गए। 'लैप्स की नीति' द्वारा अंग्रेजों ने भारतीय देशी राज्यों को कम्पनी को साम्राज्य में मिलाना आरम्भ कियां सन् 1859 झांसी को भी इस नीति के अनुसार कम्पनी ने अपने हाथ में ले लिया। देशी राजा और प्रजा कम्पनी के शासन से भयभीत थे। इसी बीच 'नये कारतूसों' ने कम्पनी की सेना के भारतीय सिपाहियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाई। इन सब कारणों से 1857 ई. का 'प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' हुआ। आधुनिक काल की यह प्रथम प्रमुखतम राजनीतिक घटना है। एक वर्ष तक स्वतन्त्रता संग्राम की यह लहर चलती रही। सन् 1858 में अंग्रेजों ने इस स्वतन्त्रता संग्राम का दमन कर दिया। देशी राजाओं की सैनिक शक्ति पहले ही से नष्ट कर दी गई थी। इस स्वतन्त्रता संग्राम की असपफलता के साथ कम्पनी का शासन भी समाप्त हुआ और भारतवर्ष सीधे इंग्लैण्ड की राजनीतिक सत्ता विक्टोरिया के शासन-से सम्बद्ध हो गयी। विक्टोरिया के शासनकाल में भारतवर्ष के लिए अनेक सांतवना देने वाली घोषणाएं की गई। धर्म में हस्तक्षेप न करने की नीति की भी घोषणा हुई। पर यह सब नाम मात्र की ही सांत्वना थी। राजनीतिक क्षेत्र में विजयी अंग्रेजों ने धीरे-धीरे सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी सपफलता के लिए पग बढ़ाए। अंग्रेजी सभ्यता, साहित्य और भाषा की उच्चता का प्रचार करने के लिए लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा के विद्यालयों की स्थापना करवाई, जिससे भारतीय शिक्षित पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगने लगे। ईसाई मिशनरियों ने ईसाइयत का प्रचार किया। इस प्रकार प्रशासनिक सुधारों के साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृत्ति का प्रचार अंग्रेजों द्वारा होने लगा। धीरे-धीरे उनकी शोषण नीति भी प्रकट होने लगी। भारतेन्दु-युग के कवियों ने इसीलिए 'अंग्रेज राज सुख साज' के साथ 'सर्वस लिए जात अंग्रेज' की भावना अपने साहित्य में प्रकट की है।

देश में राजनीतिक चेतना का प्रतीक 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना सन् 1885 में हुई। आरम्भ में भारतीय प्रशासकीय कार्यों में सहयोग देना इसका उद्देश्य था, परन्तु बाद में बाल गंगा धर तिलक जैसी प्रतिभाओं के आगमन से इसकी विचारधारा में परिवर्तन हुआ तथा इसका उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्ति हो गया। सन् 1905 में बंगभंग के कानून से भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना को तीव्रता मिली। अनेक क्रान्तिकारी संस्थाओं का निर्माण होने लगा जिनका उद्देश्य अंग्रेजों से भारत को स्वतन्त्रता दिलाना था। इन संस्थाओं से सम्बन्धित कर्णधारों में तिलक, अरविन्द घोष, रासबिहारी बोस, चन्द्रशेखर आजाद आदि का उल्ले है। सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने अंग्रेजों को सहयोग दिया। परन्तु सन् 1919 में युद्ध समाप्ति पर उस सहयोग के बदले इनको अंग्रेजों की दमन नीति का शिकार होना पड़ा। जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड इसका ज्वलन्त प्रतीक है। सन् 1920 में कांग्रेस की बागडोर गांधीजी के अतिरिक्त लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू आदि का सहयोग भी एवं कांग्रेस को प्राप्त सहयोग के दो रूप थे-विदेशी शासकों के साथ असहयोग तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। इस प्रकार इस आन्दोलन का मुख्य कार्य स्वदेशी का प्रचार था। नमक कर विरोध, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि कांग्रेस द्वारा परिचालित कार्यक्रमों पर देशभक्त चलते रहे। इसके लिए बड़े-बड़े नेताओं ने गिरफ्तारी दी, परन्तु अंग्रेजों का दमन बढ़ता रहा। सन् 1920-30 तक अंग्रेजों की कूटनीति का दमन चक्र बड़ी तीवता से चला। हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता भाषा सम्बन्धी झगड़े, मुस्लिम लीग की स्थापना, गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान आदि घटनाएं सी युग की हैं। सन् 1930 में नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने स्वराज्य के लक्ष्य की प्रथम बार घोषणा की। सन् 1930-35 तक का

समय राजनीतिक कमीशनों कांन्फ्रेंसों और सन्धियों का समय है। सन् 1936 के कांग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल ने समाजवादी विचारधारा को प्रकट किया। सन् 1937 में भारत के अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने। सन् 1938 के कांग्रेस अधिवेशन में सुभाषचन्द्र बोस ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए देश की निर्धनता को दूर करने तथा भूमि सम्बन्धी नीति में परिवर्तनों पर अपने विचार प्रकट किए। सन् 1939 के दूसरे महायुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन होने के कारण भारत को अनीच्छापूर्वक भाग लेना पड़ा। युद्ध के बाद भी दमन चलता रहा। परिणामत: कांग्रेस की ओर से सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन आरम्भ हुआ। सन् 1945 में ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी जिसे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन साथ सहानुभूति थी। सन् 1946 के संविधान सभा के चुनाव में कांग्रेस को आशातीत सफलता मिली। कांग्रेस। इस सफलता से मुस्लिमलीग के नेता जिन्ना बहुत परेशान हुए उनकी घृणोत्पादक नीति के फलस्वरूप कलकत्ता, नोआखली, बिहार आदि में दंगे हुए। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ, साथ ही पाकिस्तान को भी पृथक राजनीति सत्ता प्राप्त हुआ। साहित्यकारों ने इस स्वतन्त्रात का स्वागत किया तथा विभाजन पर दु:ख प्रकट किया। स्वातन्र्त्य संघर्ष युगीन साहित्य में देश प्रेम, राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना एवं जनजागरण के स्वर प्रमुख रूप से मिलते हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत का शासन–सूत्र एक लम्बे अवसर तक कांग्रेस के हाथों में रहा है। शरणार्थियों की समस्या, देशी रियासतों की समस्या आदि समस्याएं देश के सम्मुख स्वतन्त्रता के बाद की मुख्य समस्याएं थीं। सरदार पटेल के प्रयत्नों से देशी रियासतों का भारत में विलय हुआ।

जनवरी, 1948 में गांधीजी की हत्या हुई। साहित्यकारों ने इस पैशाचिक काण्ड की भर्त्सना की। 1952 ई. में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस विजय हुई। बाद के चुनावों में भी कांग्रेस को बहुमत मिलता रहा। सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा कांग्रेस देश की समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्नशील रही। सन् 1962 में चीन द्वारा भारतीय सीमा पर आक्रमण, सन् 1965 में पाक के साथ संघर्ष सन् 1971 में स्वतंत्र बांग्ला देश की स्थापना आदि स्वतंत्रता के बाद की प्रमुख घटनाएं हैं। सन् 1977 में विभिन्न राजनीतिक दलों ने मिलकर केन्द्रीय शासन की बागडोर संभाली, पर वे बहुत देर तक सफल न हो सके। पुन: कांग्रेस का शासन स्थापित हुआ परन्तु राजीव गांधी की हत्या के बाद पुन: किसी एक पार्टी को बहुमत नहीं मिला। सम्प्रति अटलबिहारी के नेतृत्व में विविध राजनीतिक दलों की सरकार शासन की बागडोर सम्भालते हुए हैं। इसे आतंकवाद की समस्या से जूझना पड़ रहा है। कांग्रेस शासन में स्वतन्त्र भारत की राजनीतिक चेतना राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विकसित हुई। भारत की राजनीति समाजवादी दृष्टि को लेकर चल रही है। व्यापक रूप से वह अन्तर्राष्ट्रीय का सजग साझीदार हैं। इस प्रकार आधुनिक युग राजनीतिक दृष्टि से उथल–पुथल का युग रहा है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी सक्रिय भाग लिया है। हिन्दी साहित्य की कविता. उपन्यास, कहानी, नाटक आदि सभी विधाओं में इस राजनीतिक उथल–पुथल का किसी–न–किसी रूप में चित्रण है।

• **सामाजिक परिस्थितियां –** भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आई उसका कारण आंग्ल–भारतीय संस्कृतियों का सम्पर्क है। सामाजिक क्षेत्र में अनेक परम्पराओं एवं अन्धरूढ़ियों का प्रचलन था जिनमें सतीप्रथा, नरबलि बाल–हत्या, बाल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, बहुविवाह आदि प्रमुख इन अन्ध–परम्पराओं के कारण हिन्दू समाज की स्थिति शोचनीय थी। अंग्रेजी शासन ने कई कानून बनाकर सतीप्रथा, नरबलि, बाल–हत्या आदि को रोकने का प्रयत्न किया। इधर ईसाई धर्म का भारत में प्रचार होने लगा था। ईसाइयत को श्रेष्ठ प्रतिपादित करने के प्रयास में ईसाई पादरियों ने हिन्दू–धर्म और समाज की आलोचना की। ऐसे समय में ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि के आन्दोलनों का समाज–सुधार में महत्वपूर्ण योगदान रहा। स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म की अनुदारता एवं कट्टरपन को दूर करने के लिए क्रान्तिकारी प्रयत्न किये।। दयानन्द वैदिक संस्कृति के समर्थक थे। उन्होंने अपने भाषणों में हिन्दू–धर्म के बाह्याकारों, संकीर्णताओं आदि का विरोध किया। उनके प्रयत्नों से सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जागृति आई। सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में उनसे पूर्व राजा राममोहन राय का भी नाम उल्लेख्य है। उन्होंने 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की थी। वे स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि के समर्थक थे। वे स्वतन्त्रता के अनन्य उपासक थे। इन संस्थाओं के के अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज तथा थियोसोफिकल सोसायटी ने भी आधुनिक युग के समाज को राजनीतिक, धार्मिक और

सामाजिक दृष्टि से प्रभावित किया है। अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव भी भारतीय समाज पर त्ता पड़ा है। इससे शिक्षित धर्म के लोग अंग्रेजी सभ्यता में रंग गये थे। साथ ही उन्हें सामाजिक जागरण भी प्राप्त हुआ था। भारतेन्दु और द्विवेदीयुगीन साहित्य में उक्त धार्मिक सामाजिक संस्थाओं के सुधारों को किसी-न-किसी रूप या में अभिव्यक्ति मिली है। इस युग में अरविन्द, रवीन्द्र और गांधी के विचारों का समाज पर विशेष प्रभाव था। गांधी ने अछूतोद्धार के लिए कई आन्दोलन किए और उन्होंने जातिगत संकीर्णताओं से हिन्दू-समाज को मुक्त करने का प्रयत्न किया। उनसे पूर्व अरविन्द घोष तथा रवीन्द्रनाथ ने मानवतावादी भावनाओं का प्रचार किया। इस प्रकार इस युग में सामाजिक व्यवस्था में कई ठोस परिवर्तन हुए। सन् 1935 के बाद सामाजिक क्षेत्र में समाजवादी विचारधाराओं ने देश की सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप शोषित वर्ग (कृषक और श्रमिक वर्ग) की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। प्रगतिवादी साहित्य में देश के शोषित वर्ग तथा मध्यवर्ग की विपन्नता का चित्रण है। वर्ग वैषम्य के कारण वर्ग संघर्ष भी हुए। भारतीय जनता में आर्थिक विपन्नता के बाद भी स्वतन्त्रता के लिए तीव्रेच्छा थी। सामाजिक जीवन में मध्यवर्ग का स्वरूप भी इसी युग में उभरा है। स्वतन्त्रता के लिए तीब्रेच्छा थी। सामाजिक जीवन में मध्यवर्ग का स्वरूप भी इसी युग में उभरा है। स्वतन्त्रता के बाद रही सामाजिक स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन आया है। जातिगत भेदभाव का निवारण, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, श्रमिक एवं कृषक वर्ग में सुधार, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार आदि के प्रयत्न सरकार ने कानून बनाकर किये थे। समाजवादी शासन की स्थापना भारत का लक्ष्य थी। पंचवर्षीय योजनाओं से देश की आर्थिक स्थिति को सम्पन्न बनाया जा रहा था।

• **धार्मिक परिस्थितियाँ** - नवयुग की चेतना से इस युग में हिन्दू धर्म में रूढ़िवादिता के स्थान पर स्वस्थ धार्मिक दृष्टिकोण स्थान पाते हैं। मध्यकालीन धार्मिक भावनाओं का रूप इस युग में मिलता है। धार्मिक भावना में मानवतावादी दृष्टि का विकास इसी युग में हुआ है। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म आदि के प्रचारकों ने रुढ़िगत धर्म के स्थान पर स्वस्थ, उदार एवं उदात्त धर्म को अपनाने का सन्देश दिया। हिन्दी के द्विवेदीयुगीन काव्य में धर्म के इसी मानवतावादी रूप को अभिव्यक्ति मिली है। रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि धर्म-सुधारकों ने इस युग के ध ार्मिक विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक विचारधाराओं के समन्वय से भारतीय वैष्णव भावना एवं आध्यात्मिकता ने मानवतावाद के रूप में अपने को रूपायित किया है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ भारत में ध र्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना हुई, जिसमें राष्ट्रीय एवं मानवतावाद को सर्वोपरि स्थान मिला। स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हमारी सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि अतिवाद के स्थान पर समन्वयात्मक हो गई है, जिसमें वैज्ञानिकता एवं बौद्धिकता की विशेष प्रेरणा है।

• **आर्थिक परिस्थितियाँ–** आर्थिक दृष्टि से यह समय भारतीय जनता के शोषण और प्रताड़ना का समय रहा, यद्यपि अंग्रेजों के आगमन से पहले पर्याप्त उन्नत उद्योग धंधे थे, परन्तु अंग्रेजों ने उन्हें पूरी तरह नष्ट कर दिया। यहां से कौड़ियों के भाव कच्चा माल इकट्ठा करके उसे इंग्लैण्ड भेजना और तैयार माल के रूप में वापस लाकर उसे सोने के भाव बेचना तथा यहां बाबू-सभ्यता का विकास उनकी सुनियोजित नीति का एक अंग था। पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मजदूर को खाने के लाले पड़े थे। भूख और बेरोजगारी का बोलबाला था। 1857 की क्रांति में जिन लोगों ने क्रांति का साथ दिया, उनकी जमीन छीन ली गयी और जिन्होंने उनका साथ नहीं दिया उन्हें जमीन दी गई। इस तरह देश में जमींदारी प्रथा का आरंभ हुआ। अंग्रेजी सत्ता के आश्रय जमींदारों ने किसानों पर भयंकर अत्याचार किए। अन्न उत्पन्न करके भी वे अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसते रहे। बंगाल के दुर्भिक्ष की स्मृति आज भी रोंगटे खड़े कर देती है। दूसरे महायुद्ध के बाद फैली महंगाई ने जन-सामान्य की कमर तोड़ डाली थी। इस प्रकार स्वतंत्रतापूर्व देश पूरी तरह अभाव ग्रस्त और जीर्ण-जर्जरित था। स्वतंत्रता के बाद ही पंचवर्षीय योजनाओं आदि के माध्यम से आर्थिक पुनर्निर्माण की गतिविधियां आरंभ हो सकी।

• **सांस्कृतिक पृष्ठभूमि** - हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए देश की सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी विचार करना प्रासंगिक होगा। तत्कालीन सामाजिक विकृतियों की टकराहट ने 19वीं सदी के अंत में तथा 20वीं शती के प्रारम्भ में भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागरण और सांस्कृतिक अस्मिता के बोध की प्रेरणा जगाई। अंग्रेजी शासन की रीति, नीति, शिक्षा आदि की व्यापक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप देश में सांस्कृतिक जागरण की एक लहर आई।

उधर भारत में धर्म-प्रचार के लिए ईसाई मिशन बहुत पहले ही भारत में आ चुके थे। इसलिए अंग्रेजों ने धर्म-प्रचार के उद्देश्य से अंग्रेजी शिक्षा पर विशेष बल दिया। अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से अनेक स्कूल, कॉलेज खोले गए। बाईबिल का भारतीय भाषाओं अनुवाद किया गया। अंग्रेजी शिक्षा देने के उद्देश्य से कलकत्ता में सन् 1801 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। मैकाले की सिफारिशों के अनुसार अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को सरकारी नौकरियां आसानी से मिल जाया करती थीं। उधर ईसाई मिशनरी अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाने में लगे हुए थे। इस शिक्षा का प्रभाव देश में मध्य वर्ग और निम्न वर्ग पर बहुत पड़ा।

● **साहित्य पर प्रभाव –** उपर्युक्त नवजागरण, समाज सुधार एवं धार्मिक आंदोलनों तथा अन्य परिस्थितियों ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को नई चेतना और नये विचार प्रदान किए। साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। ''पै धन विदेश चलि जात यह अति ख्वारी'' जैसे कथनों से राष्ट्रीय चेतना का अंकुरण हुआ जो बाद में मैथिलीशरण गुप्त, निराला तथा रामधारी सिंह दिनकर जैसे कवियों की वाणी के रूप में विकास सकी। सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलनों के परिणामस्वरूप साहित्य में रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्ति, बार विवाह, सती तथा दहेज प्रथा आदि के विरोध के स्वर उभरे। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह की आवश्यकता का प्रतिपादन हुआ। आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव से साहित्य में यथार्थ चित्रण आरंभ हुआ। जमींदारी शोषणवर्ग, विषमता, पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए वर्गहीन समाज की स्थापना के लक्ष्य को लेकर प्रगतिवादी साहित्य की रचना हुई। निराला और पन्त की काव्य रचनाएँ प्रसाद, प्रेमचन्द और यशपाल, जैसे साहित्यकारों के उपन्यास तथा कहानियां इसके प्रमाण हैं। पंत की 'गुंजन' के बाद की रचनाओं पर गांधीवादी, साम्यवादी तथा अरविन्दवादी प्रभाव स्पष्ट है। धर्म की बौद्धिक व्याख्या तथा जीवन के यथार्थवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव के कारण काव्य की भावभूमि और कलापक्ष में नये प्रयोग आरंभ हुए।

● **नवजागरणकालीन साहित्य की विशेषताएं –** आजादी के बाद परिस्थितियों के परिवर्तन में परिणामस्वरूप साहित्य में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया। जो काव्य और साहित्य तक राजाओं, श्रीमतों, नवाबों के विलास का मनोरंजक और कलात्मक साधना थी। वह दरबार की सीमा लांघकर जनसामान्य की वाणी बोलने लगा। काव्य की नाजुकता के साथ-साथ विचारों को वहन करने वाले सशक्त गद्य का जन्म हुआ। गद्य की अनेक विधाओं ने साहित्य को नए आयाम दिए। स्पष्ट है कि आधुनिक काल सभी दृष्टियों से नवजागरण का काल इस काल में नए आन्दोलन, नए विचार, नए सांस्कृतिक मूल्य नए प्रयोग हुए। कुछ विद्वान इसे 'पुनर्जागरण काल' की भी संज्ञा देते हैं लेकिन 'नवजारण काल' की संज्ञा कहीं ज्यादा सटीक एवं सार्थक जान पड़ती है। इस काल में साहित्य की जो नवीनता दिखती है, उन्हीं विशेषताओं को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

राजनीति, समाज एवं धर्म सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय चेतना का विकास आधुनिक युग के परिवेश की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है। यह राष्ट्रीय भावना आधुनिक युग की सांस्कृतिक स्थिति का निर्धारक तत्त्व कहा जा सकता है। आधुनिक युग के साहित्य के निर्माण में उक्त समसामयिक परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके साथ ही अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधाराएं यथा आदर्शवाद, अभिव्यंजनावाद रूपवाद, समाजवाद, मानवतावाद यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद, प्रतीकवाद, व्यक्तिवाद अस्तित्ववाद, गांधीवाद आदि ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग को प्रभावित किया है।

स्वयं आकलन प्रश्न-2

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को क्या नाम दिया है?
2. आधुनिक काल की समय सीमा शुक्लनुसार क्या है?
3. आधुनिक शब्द का अंग्रेजी पर्याय क्या है?

1.5 सारांश

आधुनिककालीन पृष्ठभूमि में नवजागरण ने भारतीय जीवन को आधुनिक सामाजिक चेतना से समृद्ध बनाया जिसके अंतर्गत लोक जीवन में सामाजिक परिवर्तन आधार भूमि तैयार हुई। नवजागरण के प्रभाव का विस्तार दूर-दूर तक हुआ और उसने स्त्रियों की सामाजिक दशा तथा उनकी भूमिका को भी प्रभावित किया।

1.6 कठिन शब्दावली

दृष्टिकोण - परिप्रेक्ष्य, विचार

आध्यात्मिकता - आध्यात्मिक प्रवृत्ति

प्रवृत्ति - स्वभाव

अधावधि - आज तक

बहिष्कार - अलग करना

1.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 के उत्तर

1. सन् 1868 ई. से
2. किसी युग में नवीन चेतना का उदय

अभ्यास प्रश्न – 2 के उत्तर

1. गद्य काल
2. संवत् 1900 से अब तक
3. 'मॉडर्न'

1.8 संदर्भित पुस्तकें

1. आर्चाय रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी का साहित्य का इतिहास।
2. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास।
3. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

1.9 सात्रिक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करें।
2. साहित्य में आधुनिक काल की राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए?
3. सन् 1857 ई. की राज्यक्रांति और पुर्नजागरण के परस्पर प्रभाव की विवेचना कीजिए?

*****

इकाई – 2
सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्‌देश्य

2.3 सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण

2.3.1 भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना

2.3.2 विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी

2.3.3 1857 ई. के विद्रोह के कारण

2.3.4 भारतीय पुनर्जागरण

स्वयं आकलन प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

2.1 भूमिका

इकाई एक में हमने आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एवं नवजागरण तथा हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का आरंभ का अध्ययन किया। इकाई दो में हम सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना, विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी तथा 1857 ई के विद्रोह के कारण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्‌देश्य

इकाई दो का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण क्या है?
2. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना कब हुई?
3. विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी का क्या महत्व है?
4. 1857 ई. के विद्रोह के कारण क्या थे ?
5. आधुनिककालीन परिस्थितियां क्या है?

2.3 सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियां तो उत्तरदायी थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के रूप ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी शासन भी जिम्मेदार था। जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षत: तथा परोक्षत: पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। अत: इस ऐतिहासिक घटनाक्रम को जाने बिना हमारे लिए तो आधुनिक काल के प्रारम्भ की तत्कालीन परिस्थितियों का स्वरूप स्पष्ट हो सकता है और न ही उन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्य का केन्द्रीय दृष्टिकोण। इसीलिए पहले हम इस युग की पूर्वपीठिका के रूप अंग्रेजी भारत से जुड़ी हुई कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा करेंगे, तत्पश्चात्

उन घटनाओं के प्रभाव तथ उनकी प्रतिक्रिया में विकसित होने वाले विभिन्न परिस्थितिजन्य आन्दोलन, दर्शनों की बात करेंगे, जिन्होंने हम आलोच्य काल की विभिन्न परिस्थितियों के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और जिनसे प्रेरित होकर हमारे साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता का आह्वान किया।

2.3.1 भारत में बिटिश साम्राज्य की स्थापना

अंग्रेजों ने सन् 1600 में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के नाम से भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किए तथा धीरे-धीरे इस क्षेत्र में अपने अन्य प्रतिद्वंदियों-उच्च, पुतर्गगालों तथा फ्रांससियों को भगा कर इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। व्यापारिक क्षेत्र में एकाधिकार के गर्व ने अंग्रेजों में भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप की महत्त्वकांक्षा को भी हवा दी। फलस्वरूप 1757 ई. में उन्होंने प्लासी के युद्ध में बंगाल नवाब को तथा 1764 ई. में बक्सर के युद्ध में मुगल सम्राट, बंगाल के नवाब और अवध के नवाब-तीनों पराजित करके भारत में अपने शासन की नींव रखी। रॉबर्ट क्लाइव को बंगाल का पहला गर्वनर नियुक्त किया गया जिसने भारत में अंग्रेजी सत्ता की नींव मजबूत बनाने के लिए अनेक प्रकार के सुधार किए। उसके बाद वॉरेन हेस्टिंगज तथा कार्नवालिस ने अपने शासनकाल में क्लाइव की उदार नीतियों का ही विस्तार करते हुए भी सुधार किए। भले ही उक्त अंग्रेज गर्वनरों ने सुधारवादी नीतियों को अपनाया था, परन्तु सामान्य जनता में यह विश्वास दृष्ट होता जा रहा था कि अंग्रेज जो भी सुधार कर रहे हैं उसके पीछे उनका अपना स्वार्थ ही कार्यक रहा है। इसलिए प्रजा में अंग्रेजों के प्रति नफरत तथा विद्रोह की भावना भी साथ-साथ पनप रही थी।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विश्व मंच पर दो अन्य ऐसी घटनाएं घटित हुई जिनका प्रमाण समूचे विश्व के साथ-साथ भारत में दिखाई दिया। इसमें पहली घटना थी। फ्रांस की राज्य क्रान्ति (1789) जिसने सामंतवा प्रथा के विनाश तथा प्रजातंत्र की स्थापना के माध्यम से विश्व स्तर पर स्वतन्त्रता समानता तथा भातृत्व के आदर्श का संदेश प्रेषित किया, जो भविष्य में होने वाले सभी जन-आन्दोलनों का मूल मंत्र बना। इसी प्रकार दूसरी घटना भी - नेपोलियन बोनापार्ट (1769-1821) की विश्व विजय को महत्त्वाकांक्षा। उसकी इस विस्तारवादी नीति से जहां एक ओर सम्पूर्ण यूरोप क्षतिग्रस्त हुआ, वहीं परोक्षत: समूचे यूरोप के साथ-साथ भारत जैसे अनेक देशों में भी राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-धर्म की भावना का विकास हुआ। यहां पर लोगों के मन में राष्ट्रीय प्रेम की सुस्पष्ट भावना जागृत हुई। इस प्रकार 18वीं शताब्दी के अन्त तक जहां एक ओर अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन सीमाएं बढ़ा ली थीं तथा अपने शासन की लम्बी आयु के लिए सुधार भी कर रहे थे वहीं दूसरी ओर भारतीय जनता में उनके प्रति उन सभी विरोधी तत्वों का जन्म भी हो चुका था, जिनसे आगे चलकर 1857 में देशव्यापी विद्रोह ने जन्म लिया। इसमें फ्रांस की क्रान्ति तथा नेपोलियन की विस्तारवादी नीतियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.3.2 विश्व के इतिहास में 19वीं शताब्दी

'Centuary of Reforms' के नाम से अंकित है। इस शताब्दी में समूचे विश्व में मनुष्य-जीवन की सुखद, समृद्ध तथा सुगम बनाने के लिए समाज में सभी स्तरों पर अनेक प्रयास किए गए। भारतीय इतिहास में वस्तुत: यही वह परिवर्तन काल है, जहां से मध्यकालीन बोध का प्रभाव छंटता है और आधुनिक सोच का प्रभाव बढ़ने लगता है। यहां से मध्यकालीन पारलौकिक दृष्टिकोण के बदले अलौकिक दृष्टिकोण का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप एक तो ईश्वर अपने ब्रह्मलोक को त्याग कर इहलोक में सामान्य मनुष्य के रूप में प्रवेश पाता है। अर्थात् मध्ययुग का ईश्वर-चिन्तन इस युग में मनुष्य-चिन्तन में परिवर्तित हो जाता है तथा दूसरे व्यष्टि हित के बदले समष्टि हित का चिन्तन पल्लवित होता है। यहीं वह मुख्य दृष्टिकोण है जो समूचे आधुनिककालीन साहित्य में किसी न किसी रूप में व्याप्त है।' अरस्तु 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में तो अंग्रेज तो देश भर में अपना राज्य विस्तार करने में जुटे ही हुए थे, परन्तु उधर इंगलैंड की तीन मुख्य घटनाओं ने भी भारतीय जनमास पर अपना परोक्ष प्रभाव डाला। उनमें से पहली घटना भी ईसाई मत को विश्व स्तर पर प्रचार-प्रसार का आन्दोलन ऐसा नहीं है कि इसमें पूर्व ईसाई मिशनरी इस कार्य में नहीं जुटे हुए थे। निस्संदेह वे अपना कार्य कर रहे थे परन्तु ईसाई धर्मावलम्बियों के इस आन्दोलन ने प्रचार की प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया। उसी के परिणामस्वरूप भारत

में भी ईसाई मिशनरी इंग्लैंड से प्रोत्साहन पाकर और भी उत्साह से इस कार्य में जुट गए जिसकी प्रतिक्रिया भी हमारे धार्मिक क्षेत्र में उतनी ही तेजी से हुई। दूसरी घटना थी औद्योगिक क्रान्ति। इंग्लैंड के औद्योगिकरण के पश्चात् जब वहां कच्चे माल की पूर्ति तथा तैयार माल की बिक्री की समस्या आई, तब इस कार्य के लिए उन्हें भारत सबसे उपयुक्त देश दिखलाई दिया। फलस्वरूप वहां से कच्चा माल सस्ते में जाने लगा और तैयार माल मंहगे भाव में लोगों तक पहुंचने लगा, जिसकी प्रतिक्रिया में आगे चलकर 'स्वदेशी आन्दोलन' को अपनाया। इस आन्दोलन के नेताओं की मांग थी कि किसी भी कीमत पर लोगों की भलाई के लिए कार्य करना चाहिए। उनकी मांग थी कि सरकार को कानून बनाकर मानव कल्याण का प्रयास करना चाहिए। इस आन्दोलन का शुभ प्रभाव यह हुआ कि इधर भारत में तत्कालीन गर्वनर जनरल विलियम बैटिक ने अनेक प्रकार के कानून बनाकर भारतीय जीवन में सुधार लाने का प्रयास किया। उनमें से 1829 में उसके द्वारा बनाया गया सती-प्रथा की समाप्ति का कानून उस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी प्रकार उसने लोगों को ठगने वालों के विरुद्ध कड़ा निर्णय लेकर जनता की उनसे मुक्ति दिलवाई तथा कन्या की हत्या और मनुष्य बलि को भी बन्द करवाया। ऐसा नहीं है कि यह सब कुछ विलियम वैटिक ने स्वयं ही कर दिया था। वस्तुतः उन दिनों इंग्लैंड के उपभोगितावादी आन्दोलन के प्रभावस्वरूप समूचे विश्व में सुधारवादी आन्दोलन चले। भारत में भी राजा राममोहन राय जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने इससे प्रभाव ग्रहण करके सुधारों के लिए सरकार पर जोर देना शुरू कर दिया था, जिसकी वजह से देश में अनेक सामाजिक सुधार हुए। सती प्रथा का बंद होना उनमें से एक है।

विलियम बैटिक के बाद लॉर्ड डलहौजी वह दूसरे महत्त्वपूर्ण गर्वनर जनरल हुए, जिन्होंने अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए। उनके द्वारा किए गए सुधार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे- भारत में रेल (1853), डाक व तार-सेवा का प्रारम्भ (1854)। इन्हीं के प्रयासों से भारत में पहली बार इन सेवाओं की योजना बनाई गई तथा इन्हें क्रियान्वित रूप दिया गया। इनसे जहां उन्हें प्रशासन बनाने में सुविधा हुई, वहां भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए भी यह सेवाएं वरदान सिद्ध हुई। उल्लेखनीय हैं कि उक्त समस्त सुधारों के बावजूद भी अंग्रेजों का भारतीय लोगों के प्रति व्यवहार कोई बहुत अच्छा नहीं था। सरकारी नौकरियों में रंग-भेद के आधार पर व्यवहार किया जाता था। भारतीय लोगों को शिक्षित होने के बावजूद भी उच्च पदों से वंचित रखा जाता था। न्याय करते समय भी रंग-भेद आड़े आता था। अनेक भारतीय शासक, जिनका अंग्रेजों ने राज्य छीन लिया था, अंग्रेजों से नफरत करते थे। इन सबके साथ-साथ देश के कट्टरपंथी लोग भी अंग्रेजों से नाराज थे। उन्हें विश्वास हो चुका था कि अंग्रेज पश्चिमी शिक्षा-पद्धति के नाम पर उनकी संस्कृति को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार 1857 ई. तक भारत में अंग्रेजों ने जब अपने प्रशासन के सौ वर्ष पूरे किए तब उनके द्वारा किए गए बहुत ने सुधारों के बावजूद उनके विरुद्ध बहुत से ऐसे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कारण भी एकत्रित से चुके थे, जिन्होंने भारतीय जनता को उनके विरुद्ध संगठित होकर विद्रोह के लिए विवश कर दिया था। अंग्रेज शासन के इन सौ वर्षों के सन्दर्भ में डॉ. आरसी. मजूमदार ने बहुत सुंदर शब्दों में टिप्पणी की है। उनके अनुसार ''भारत में अंग्रेजी सत्ता की पहली शताब्दी ने वह मंच तैयार किया जिस पर उस दुखान्त नाटक के कुछ हिस्सों का अभ्यास भी किया जाता रहा जिसे उनकी सत्ता को सौवीं वर्षगाठ के अवसर पर खून और आंसुओं के बीच खेला जाता था।''

2.3.3 1857 के विद्रोह के कारण

यहां पर हमारे लिए 1857 के महान विद्रोह के कुछ महत्त्वपूर्ण कारणों पर भी एक दृष्टि डाल लेनी उचित रहेगी, क्योंकि इस विद्रोह के अवसर पर जिस प्रकार भारतीय लोगों ने अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किया। उसे देखते हुए इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास में इस कार्य को 'परिवर्तन का वर्ष' स्वीकार किया है।

1857 के विद्रोह के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कारण- 1757 तथा 1764 के प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद अंग्रेजों का उत्साह उतना बढ़ गया कि उन्होंने उसके बाद युद्ध की कूटनीति- जिस तरह भी संभव हुआ अपने राज्य का विस्तार करने की महत्त्वकांक्षा पाल ली। परिणामस्वरूप उन्होंने अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक, नागपुर, भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर, सिन्ध तक अपना राज्य-विस्तार कर लिया। उनक सपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध अनेक देशी राजाओं तथा जनता में नफरत की भावना बढ़ने लगी। इसमें डलहौजी की लैप्स नीति ने आग में घी का काम किया। इस नीति

के अनुसार ही नि:संतान राजाओं बच्चा गोद लेने का अधिकार छीन लिया गया तथा ऐसे राजाओं की मृत्यु के बाद उनके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया जाने लगा। इस प्रकार अंग्रेजों ने अनेक रियासतें हथिया लीं। इसी नीति के आधार पर अंग्रजों ने पेशवा बाजी राव (दूसरे) के दत्तक पुत्र नाना साहिब की पेंशन बन्द कर दी, जिससे नाना साहिब भी अंग्रेजों के विरूद्ध हो गए। इसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा अवध राज्य का हिस्सा अपने अधिकार में लेना, मुगल सम्राट का निरादर करना तथा असंख्य बेकार किए गए सैनिकों का रोष-कुछ अन्य ऐसे कारण थे, जिन्होंने 1857 के विद्रोह जन्म देने में विशेष भूमिका निभाई। इसी क्रम में अंग्रेजों द्वारा भारतीय लोगों में दुव्यर्वहार, भारतीय लोगों को ऊंचे पदों पर नियुक्त न करना तथा उनकी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली ने भी लोगों को उकसाया।

सामाजिक तथा धार्मिक कारणों के अन्तर्गत अंग्रेजों की रंग-भेद नीति, भारतीय जनता के सामाजिक कृत्यों में अनाधिकार हस्तक्षेप, ईसाई धर्म का प्रसार आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिन्होंने विद्रोह भावना को खूब हवा दी। बैटिक तथा डलहौजी द्वारा बनाए गए सती प्रथा, कत्ल करना, विधवा-विवाह मनुष्य-बलि सम्बन्धी कानून कट्टरपंथी हिन्दुओं के गले से नीचे न उत्तर सके। उन्हें लगा कि अंग्रेजों ने ऐसा करके उनकी संस्कृति को चोट पहुंचाई है। फलत: ये लोग भी उनके विरूद्ध हो गए। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार उनके लिए सहनीय नहीं था। इतना ही नहीं अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा किए गए अनेक सुधार भी उनके विरूद्व विद्रोह उत्पन्न करने में सहायक बने। रेल, डाक, तार सेवा ने देश के एक प्रान्त के लोगों को दूसरे प्रान्त लोगों को निकट कर दिया। परिणामस्वरूप उनमें वैचारिक-विनिमय के साथ-साथ अंग्रेजों की अन्यायपूर्ण तथा अत्याचारपूर्ण घटनाओं की सूचना का भी आदान-प्रदान होने लगा। जिससे सामान्य जनता में विद्रोह के उपयुक्त मानसिकता की जमीन तैयार हुई। देश की आर्थिक स्थिति भी इस विद्रोह का मुख्य कारण बनी, क्योंकि देश का बहुत-सा धन व्यापार के नाम पर विदेश जा रहा था तथा यहां के लोगों की आर्थिक हालत पतली होती जा रही थी। अन्तत: इन समस्त कारणों को तत्कालीन घटनाओं ने विद्रोह में परिवर्तित कर दिया।

भले ही यह विद्रोह अंग्रेजों द्वारा असफल बना दिया गया, परन्तु इस विद्रोह ने देश के लोगों की उन भावनाओं को अवश्य व्यक्त कर दिया, जो अंग्रेजों के प्रति नफरत और क्रोध का रूप धारण कर रही थी। दूसरे, इसके माध्यम से देश के कोने-कोने तक लोगों की आजादी की इच्छा का संदेश प्रसारित हुआ, जिससे राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंन्त्रता आन्दोलन की भावना ने और भी तीव्रता से जन्म लिया तथा आगे चल कर इण्डियन नेशनल कांग्रेस तथा अन्य क्रान्तिकारी संगठनों का जन्म हुआ। तीसरे, इसके द्वारा भारतीय लोगों के समक्ष उनकी यह ामियां भी उभर कर आई जिनके कारण उनकी विद्रोह की आवाज दबा दी गई थी। परिणामस्वरूप इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के पश्चात् उन्होंने स्वयं को सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में भी नए दृष्टिकोण व नए विचारों से सम्पन्न करने का प्रण लिया, जिसमें निस्सदेह नई शिक्षा प्रणाली बहुत सार्थक सिद्ध हुई। इस नई शिक्षा प्रणाली को यद्यपि अंग्रेजों ने अपनी जरूरत के लिए विकसित किया था, परन्तु अन्तत: यह भारतीय लोगों में नई सोच व नए दृष्टिकोण के विकास में सहायक सिद्ध हुई, जिससे प्रभावित होकर भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर अनेक नए आन्दोलनों का जन्म हुआ। इस प्रकार हम नई शिक्षा प्रणाली के महत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सकते और इसीलिए यहां उस पर भी एक दृष्टि डालनी समीचीन रहेगी।

2.3.4 भारतीय पुनर्जागरण –

आधुनिक काल की पूर्व पीठिका के रूप में भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना तथा उसकी प्रतिक्रिया में भारतीय समाज में जन-चेतना की प्रक्रिया की उपर्युक्त लम्बी भूमिका में एक बात निश्चित रूप से स्वीकार की जा सकती है कि 1757 से लेकर 1857 तक की एक शताब्दी की कालावधि ने पूरे भारत का राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिवेश निरन्तर संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। राजनीति में जहां अंग्रेजों का शक्ति-विस्तार भारतीय राजाओं और यहां की जनता में रोष का कारण बन रहा था, वहीं पश्चात्प शिक्षा-पद्धति नए विचार और नए दृष्टिकोण के विकास का आधार बन रही थी तथा तीसरी ओर ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई मत का प्रसार भारत के धार्मिक जागरण का भी कारण बनता जा रहा था और इन सबसे प्रेरित होकर भारतीय संस्कृति का पूनरस्थापन युग आधुनिक को जोड़ने के लिए तत्पर हो गया था। निस्संदेह इस एक शताब्दी ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति प्रैस, रेल, डाक, तार आदि की सुविधाएं इतनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई कि उन्होंने

भारतीय जनता को एक सूत्र में पिरोने, परस्पर विचार – विनिमय करने तथा एक – दूसरे से प्रेरित प्रभावित होने के अनन्त मार्ग प्रसन्न कर दिए। छूआछूत, बाल – विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा – विवाह निषेध, वैवाहिक नियमों के परिचित वेश्यावृति, स्त्री – दमन, पण्डों पुरोहितों का आडम्बर तथा अनन्त अन्ध विश्वासों की सूची शामिल की जा सकती है, जो भारतीय समाज में प्रगतिशील चिन्तकों के लिए आंख की किरकिरी करने लगे थे और इसलिए ये विभिन्न आन्दोलन के रूप में इन्हें दूर करने के लिए उत्साहित होने लगे।

राजा राममोहन राय को इस दिशा में नवयुग का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने ईसाई मत के प्रचार की भी प्रतिक्रियां में ब्रह्म समाज की स्थापना (1828 ई.) द्वारा हिन्दी समाज के पुनरस्थापन का प्रथम प्रयास किया। ईसाई धर्म को लेकर उनकी प्रतिक्रिया का ढंग बिल्कुल नवीन था। उन्होंने उस कर्म का विरोध करने के बदले हिन्दू धर्म के नव – संस्कार का प्रयास किया ताकि उसकी जितनी भी आडम्बरपूर्ण परम्पराएं थीं, उनका विरोध किया जा सके। ब्रह्मसमाज का उददेश्य मूर्तिपूजा का विरोध , जाति – भेद आदि कुरितियों का निवारण, सत्ता – प्रथा का विरोध तथा एकेश्वरवाद की स्थापना थी। राजा राममोहन राय के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में प्रचलित सती – प्रथा के विरूद्ध 1829 में अंग्रेज सरकार ने कानून कर दिया। उन्होंने बहु – विवाह प्रथा का भी खंडन किया तथा विधवा – विवाह को उचित ठहराया। शिक्षा के क्षेत्र में राजा राममोहन राय ने नि:संकोच भाव से अरे शिक्षा – पद्धति का समर्थन किया। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने इंग्लैंड की सरकार को भारत के राज्य – प्रवन्ध सुधार के लिए बार – बार अपील की तथा जाति, रंग, धर्म आदि के भेद – भाव का विरोध किया। इसीलिए इतिहास में उन्हें आधुनिक काल में भारतीय 'राजनीति का पिता' (Father of Indian Politics) माना जाता है। 1833 उनकी मृत्यु के पश्चात् देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्मसमाज का कार्यभार संभाला तथा वेदों की देवी और सब धर्मो का स्त्रोत माना। उन्होंने अथक परिश्रम से इसका प्रचार कार्य किया जिससे प्रभावित होकर अनेक शिक्षित नौजवान ओर आकर्षित हुए। जिन्होंने ब्रह्मसाज की उन्नति में प्रशंसनीय कार्य किया। परन्तु 1865 में देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन में मतभेद उत्पन्न होने से ब्रह्मसमाज दो हिस्सों में बंट गया। ब्रह्मसमाज तथा भारतीय ब्रह्मसमाज केशवचन्द्र ने अपनी उदारवादी नीति के साथ इसका प्रचार किया जिससे प्रभावित होकर मदास में 'वेद समाज' और बम्बई में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना हुई।

1867 में डॉ. आत्माराम पांडुरंग ने केशवचन्द सेन के प्रचार से प्रभावित होकर बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना की। 1870 ई. में इसमें राधाकृष्ण गोपाल भंडारकर और जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे सम्मिलित हुए। रानाडे ने इसके प्रचार के लिए विशेष प्रचार किए थे। वे जाति – प्रथा के उच्छेद, विधवा – विवाह, स्त्री – शिक्षा के बाल – विवाह निषेध के समर्थक थे। उन्होंने अनेक अनाथालयों, विधवा – आवासों, रात्रि पाठशालाओं तथा कला पाठशालाओं की स्थापना की। अछूतों की दयनीय दशा सुधारने के लिए दलितों द्वारा मिशन की स्थापना की। इस प्रकार महाराष्ट्र तथा समीपस्थ प्रदेशों में प्रार्थना समाज ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

19वीं शताब्दी के सामाजिक – धार्मिक आंदोलनों में आर्य समाज की स्थापना (1867 ई.) सबसे महत्वपूर्ण घटना है। ब्रह्म समाज का पूर्वी भारत में जन्म हुआ था जबकि आर्य समाज ने पश्चिमी भारत (बम्बई) में जन्म लिया। बाद में लाहौर में भी इसकी स्थापना की गई जो बाद में इसका मुख्य्य केन्द्र बन गया। इस संस्था के संस्थापक स्वामी दयान्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म की दुर्दशा देखकर पाखण्ड के विरोध में इसकी स्थापना की थी। इसीलिए इस संस्था ने सामाजिक – धार्मिक क्षेत्र में अपने अनेक क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किए, जिनमें वेदान्त के अद्वैतवादी विचारों की पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया, एकेश्वरवाद पर बल देकर मूर्तिपूजा का विरोध किया गया, अवतारवाद का खण्डन किया गया, पुनर्जन्म में विश्वास व्यक्त किया गया, बाल – विवाह को अनुचित ठहराया गया, विशेष परिस्थितियों में विधवा – विवाह को शास्त्र सम्मत बतलाया गया, समाज में ऊँच – नीच को आर्यधर्म के विरुद्ध घोषित किया गया, स्त्री – शिक्षा पर बल दिया गया तथा मराणोपरान्त श्राद्ध कर्म को निरर्थक बताया गया। उन दिनों इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म अधिक संकीर्ण हो गया था। अत: जहां एक ओर हिन्दू धर्म में विध र्मी का प्रवेश वर्जित था, वहीं दूसरी ओर सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले हिन्दू को विधर्मी कहकर जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था, जो निराश होकर दूसरे धर्म को अपना लेता था। स्वामी विवेकानन्द ने स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए शुद्धिकरण संस्कार को महत्त्व दिया तथा 'अछूतोद्धार आंदोलन' चलाया। आर्य समाज ने शिक्षा के क्षेत्र में भी

महत्वपूर्ण योगदान दिया। देश में अनेक स्कूल कॉलेज खोले गए। कन्याओं के लिए भी अलग से विद्यालयों का विकास किया गया। गुरुकुलों की स्थापना की गई। यह कार्य दयानन्द के प्रमुख शिष्य श्रद्धानन्द ने किया। आर्य समाज के दूसरे महात्मा हंसराज ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु (1886 ई.) के चार आधयात्मिक उत्थान और जनसेवा के लिए राम कृष्ण संस्था की स्थापना की, जिसकी अनेक शास्वाएं भारत तथा विदेशों में ाेली गई। देश के अशिक्षित, पीड़ित, सेवाग्रस्त एवं पदलित्त वर्ग की सेवा करना मिशन का मुख्य उद्देश्य था। 1893 ई. में विवेकानन्द ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेकर, अध्यात्म ज्ञान पर अपना ओजस्वी भाषण देकर विश्वभर का ध्यान हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने जहां एक ओर देश की जनता के मन से यह हीन भावना दूर की कि उनके पास परिचय के सभ्य समाज को दिाने लायक कुछ भी नहीं है, वहीं विदेशियों का भी इस दिशा में भ्रम दूर किया।

19वीं शताब्दी के सुधारवादी आंदोलनों की शृंखला में थियोसीफिकल सोसायटी की स्थापना का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि इसकी स्थापना न्यूयार्क के रूसी महिला ब्लैवेट्स्की तथा कर्नल आस्काट ने 1875 ई. में की थी, परन्तु भारत में भी इन्होंने मद्रास के निकट आड्वार से 1886 ई. में इस संस्था का केन्द्र खोला। भारत में इस आंदोलन को सफल बनाने का श्रेय श्रीमति ऐनीबेंसट को है, जो जन्म से अंग्रेज किन्तु स्वेच्छा से भारतीय थीं। थियोसोफिकल सोसायटी का उद्देश्य समस्त धर्मो की मूलभूत एकता आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व देना तथा विश्वबन्धुत्व का विकास करना था। इस प्रकार इस संस्था का खूबसूरत दर्शन भारतीय धार्मिक परम्परा पर आधारित था इस आंदोलन ने हिन्दू धर्म की प्राचीन रुढ़ियों, विश्वासों और कर्मकाण्डों का समर्थन किया। श्रीमति एनीबेसेंट ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वाराणसी में 'सेंट्रल हिन्दू स्कूल' की भी स्थापना की जो बाद में कॉलेज और अन्त में हिन्दू विश्वविद्यालय में परिवर्तित हुआ। इसी आंदोलन के कारण भारत में औद्योगिक प्रदर्शनियों का संगठन हुआ, स्वदेशी के प्रचार, अछूतोद्धार, मघ निषेध तथा नारी-शिक्षा-योजना को बल मिला।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्येतिहास में सन् 1857 ई. की राज्यक्रांति व उससे पूर्व लगभग 100 वर्षो तक चले पुनर्जागरण संबंधी आंदोलनों व उन आंदोलनों को चलाने वालों का विशेष महत्व रहा है। इस राजक्रांति व पुनर्जागरण में आधुनिकता की गंध महसूस करते हुए ही इस काल के बाद हिंदी साहित्य को आधुनिक हिंदी साहित्य की संज्ञा दी गई है।

स्वयं आकलन प्रश्न

1. पहला स्वंतत्रता संग्राम कब हुआ ?
2. 1857 ई. की राज्यक्रांति का आरंभ किस शहर से हुआ ?
3. सन् 1857 की राज्यक्रांति का मूल कारण क्या था ?
4. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना कब से मानी जाती है ?
5. भारतीय पुनर्जागरण का जनक किसे माना गया है ?

2.7 सारांश

सन् 1857 ई. की राज्यक्रांति और पुर्नजागरण भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम था जो ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सैनिकों के रोष के होने से हुआ। पहाड़ी राज्यों के लोग भारत के अन्य भागों के लोगों की तरह सक्रिय नहीं थे। सन् 1857 क्रांति का हिन्दी साहित्य पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। इस क्रांति में अमीर-गरीब, उच्चवर्ग निम्नवर्ग, हिंदू-मुसलमान सभी ने मिलजुल कर भाग लिया था।

2.5 कठिन शब्दावली

पृथक - अलग

संकीर्णता - ओछापन

लालित्य - सरसता

तुकबंदी - जोड़ने की प्रक्रिया

पूर्वाभास - किसी घटना के घटित होने के पहले होने वाला भास।

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1857 ई.
2. मेरठ
3. चर्बी थाले कारतूस
4. 1757 ई.
5. राजाराम मोहन राय

2.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास।
2. श्यामचंद्र कपूर, हिंदी साहित्य का इतिहास।
3. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास।

2.8 सात्रिक प्रश्न

1. सन् 1857 की राज्यक्रांति की पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए ?
2. आधुनिक कालीन पृष्ठभूमि में पुनर्जागरण के महत्व को स्पष्ट कीजिए ?
3. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के मूल कारणों का विवेचन कीजिए।

*****

इकाई – 3
भारतेंदुयुगीन प्रमुख साहित्यकार

संरचना

3.1 भूमिका

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतेन्दुयुगीन प्रमुख साहित्यकार

- भारतेन्दु हरिशचन्द्र
- बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन'
- प्रतापनारायण मिश्र
- अम्बिकादत्त व्यास
- ठाकुर जगमोहन
- बाबू राधाकृष्णदास

स्वयं आकलन प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्दावली

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भित पुस्तकें

3.8 सात्रिक प्रश्न

3.1 भूमिका

इकाई दो में हमने सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण, 1857 ई. के विद्रोह के कारण का अध्ययन किया। पाठ तीन में हम भारतेन्दुयुगीन प्रमुख साहित्यकार और उनकी साहित्यिक विशेषताओं का गहन अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही हम भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और भारतीय पुनर्जागरण का भी अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

पाठ तीन का अध्ययन करने के पश्चात हम पाह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यकार कौन कौन है?
2. भारतेन्दु का जन्म कब और कहां हुआ ?
3. बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन की साहित्यिक विशेषताएं क्या है ?
4. प्रतापनारायण मिश्र की प्रमुख रचनाएं कौन-कौन सी हैं ?

3.3 भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार

भारतेन्दु युग आधुनिक काल का प्रवेश द्वार माना जाता है। अनेक क्रांतिकारी परिवर्तनों के परिणामस्वरूय साहित्य में जो नया रूप उभरा उसने भावों और विचारों को सशक्त अभिव्यक्ति दी वह विशिष्ट है। आधुनिक काल के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गद्य को तो जन्म दिया ही साथ ही कविता को नए आयाम दिए। दरबार की सीमा से निकालकर श्रृंगारिकता की घुटन से उबारकर भारतेन्दु ने कविता का राष्ट्रीयता, समाज सुधार जनहिताय भावना से साक्षात्कार कराया। भारतेन्दु से ही आधुनिक कविता पुरानी रुढ़ियों को तोड़ नया रूप ग्रहण करती दिखती है। भारतेन्दु की प्रेरणा ने हिन्दी भाषा के आंदोलन को वास्तविक जन आंदोलन का रूप दे दिया।

भारतेन्दु को केन्द्र करके उन काल के अनेक साहित्यकारों का एक उज्ज्वल मंडल ही प्रस्तुत हो गया जिसमें सहज – चटुल शैली वाले प्रतापनारायण मिश्र तीखो और झनझना देने वाली भाषा में खरी खोटी सुना देने में वाले पं. बालकृष्ण भट्ट अनुप्रासयुक्त शैली की कविजनोचित भाषा लिखने वाले ठाकुर जगमोहन सिंह और बद्रीनारायण चौधरी के साथ–साथ लाला श्रीनिवास दास, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, राधाचरण गोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्ण दास आदि भी साहित्य सृजन का कर्म करते रहे। इन्हीं में से कुछ का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

● **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् 1850–1885) –** आधुनिक युग के प्रवर्तक कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में 9 सितम्बर 1850 ई. तथा देहावसान 35 वर्ष की आयु में 6 जनवरी 1885 ई. को हुआ। इनके पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास (सन् 1883–1860) की गणना हिन्दी के महान कवियों में की जाती है। उन्होंने 'नहुष' नाटक तथा कई कविताएं लिखी थीं। भारतेन्दु जी ने इनके लिखे चालीस ग्रंथों का उल्लेख किया है। हरिशचन्द्र ने घर पर ही विभिन्न भाषाओं की शिक्षा प्राप्त की थी। अल्पायु में ही ये कविता करने लगे थे। कहते हैं कि पांच वर्ष की आयु में ही उन्होंने निम्नलिखित दोहे की रचना कर अपनी काव्य–प्रतिभा का चमत्कार दिखाया था।

लै व्योंडा ठाड़े भए, श्री अनिरूद्ध सुजान।
बाणासुर की सैनयं को हनन लगे बलवान।।

दस वर्ष की आयु में इनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया। चौदह वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वे अपने परिवार के साथ जगन्नाथपुरी गये। इस यात्रा में उन्होंने बंगला साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त किया। यहां से लौटकर वे निरन्तर साहित्य साधना करते रहे। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र सुधा' 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (बाद में 'हरिशचन्द्र चन्द्रिका') तथा 'बालाबोधिनी' पत्रिकाओं का भी प्रकाशन किया। इनकी समत्त रचनाओं की संख्या 175 कही जाती है।

साहित्य और समाज दोनों क्षेत्रों में भारतेन्दु अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। ये कवि, पत्रकार, नाटककार तथा निबन्धकार होने के साथ–साथ समाज सुधारक एवं राष्ट्रीय नेता थे। इनका 'भारतेन्दु' विशेषण इनकी लोकप्रियता का सूचक है। भारतेन्दु को अपने जीवन काल में जैसी लोकप्रियता प्राप्त हुई है, वैसी किसी अन्य साहित्यकार को नहीं। भारतेन्दु का सारा जीवन शिक्षा, साहित्य, समाज और राष्ट्र के लिए था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्यग्रंथों की संख्या 70 है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा इनका संकलन 'भारतेन्दु कंथावली' (दूसरा खण्ड) नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी कुछ प्रमु काव्य रचनाओं के नाम हैं।

प्रेम–सरोवर, प्रेममाधुरी, प्रेमतरंग, प्रेम मालिका भक्त सर्वस्व, उतरार्द्ध, भक्तमाल, प्रेमप्रलाप, सतसई, श्रृंगार, होली, मधुमुकुल, वर्षा–विनोद, विनय–प्रेमपचासा, प्रेम–फुलवारी, प्रबोधिनी, भारतभिक्षा, वैणु–गीति, मूक प्रश्न, विजयिनी विजय वैजयंती, नये जमाने की मुकरी, रिपनाष्टक, बंदर सभा आदि। भारतेन्दु की इन रचनाओं में विषय–वैविध्य दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त इनके नाटकों में आए गीत भी इनकी कवि प्रतिभा के परिचायक हैं। भारतेन्द्र की कविताओं में प्राचीनता के प्रति मोह भी है और नवीनता के प्रति आग्रह भी। वस्तुत: प्राचीनता और नवीनता का सुमधुर सामंजस्य भारतेंदु के काव्य में सर्वत्र मुखरित है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के सर्वप्रथम राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। उनके काव्य में (और नाटको में भी) देश प्रेम की सशक्त व्यंजना मिलती है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं ''भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति का था।'' भारतेन्दु की कविताओं में देश भक्ति की व्यंजना कई रूपों में हुई है। कहीं वे विदेशी शासन का विरोध करते हैं और कहीं भारतवासियों को प्रबोधित करते हैं। भारतीय धर्मो, जातियों एवं भाषाओं के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाकर भारतेन्दु ने अपने देशानुराग का परिचय दिया था। देश के अध:पतन, रूढ़िप्रियता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण, पुलिस तथा अदालती लोगों की लूट–खसूट, स्वार्थी अमीरों की स्वार्थपरता, धार्मिक मिथ्याचार, छल कपट पारस्परिक कलह–वैमनस्य आदि से देश के सामूहिक हित की आशा नहीं हो सकती। इसी से भारतेन्दु ने भारत की दुर्दशा पर दु:ख और क्षोभ व्यक्त किया है।

रोवहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई

हा हा भारत दुर्दशा देखि न जाइ।

भारतेन्दु के काव्य में देश प्रेम के साथ सामाजिक जागरण एवं समाज सुधार की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। नारी शिक्षा का समर्थन, वर्णगत भेद भाव का विरोध तथा बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि का निषेध जैसे सामाजिक विषयों को भी भारतेन्दु में अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतीय समाज का चित्रण है–

जाति अनेकन करी, नीच अरु ऊँच बनायो।

खान–पान सम्बन्ध सवन सों वरजि छुड़ायो।

भारतेन्दु के साहित्य की जनवादी एवं समाज सुधार विषयक प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ही डॉ. रामविलास शर्मा, लिखते हैं ''भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के ही अग्रदूत न थे,. वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे स्त्री–शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश यात्रा आदि के वह समर्थक थे। इससे भी बढ़कर महत्व की बात यह थी कि भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने कड़ी आलोचना की थी।''

भारतेन्दु के काव्य में भक्ति भावना का भक्तियुगीन आदर्श भी विद्यमान है। उन्होंने गेय पदों में राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। भारतेन्दु के भक्ति के संस्कार उन्हें पैतृक दाय के रूप में प्राप्त थे। वे राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। कृष्णभक्त कवियों की भांति भारतेंदु ने माधुर्य भाव की भक्ति को ग्रहण किया है तथा कर्मकाण्ड, संध्या–पूजा, स्नान, ज्ञानादि की उपेक्षा की है।

भारतेन्दु के काव्य में हास्य–व्यंग्य का समावेश एक नवीन प्रवृत्ति कही जा सकती है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि रीतिकाल के कवियों की रूढ़ि में हास्यरस के आलम्बन कंजूस आदि ही चले आते थे, पर भारतेन्दु के काव्य में हास्य रस को नये आलम्बन प्राप्त होते हैं, जैसे पुरानी लकीर के फकीर, नये फैशन के गुलाम, खुशामदी रईस, नाम तथा दाम के भूखे देशभक्त आदि। भारतेन्दु का हास्य शिष्ट एवं सोद्देश्य है। उनकी मुकरियों में हास्य के साथ सशक्त व्यंग्य भी है। 'बन्दर सभा', 'उर्दू का सयापा'आदि में सोदेश्य हास्य है। भारतेन्दु के 'अंधेर नगरी' आदि प्रहसनों में भी हास्य–व्यंग्य की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रकृति–चित्रण में भी भारतेन्दु सिद्धहस्त थे। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। इस दृष्टि से 'गंगा वर्णन' तथा 'यमुना वर्णन' उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रकृति का भावपूर्ण एवं आलंकारिक चित्रण है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'निज भाषा प्रेम' के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी से उन्होंने हिन्दी भाषा में उच्च कोटि का साहित्य निर्माण किया। भारतेन्दु की कविता की भाषा मुख्यत: ब्रजभाषा ही थी। साथ ही उन्होंने खड़ीबोली, अवधी तथा उर्दू में भी काव्य–रचना की है। गद्य के क्षेत्र में तो उन्होंने खड़ीबोली के महत्व की प्रतिष्ठापना की, परंतु कविता में वे ब्रजभाषा के प्रति अपनी आसक्ति नहीं छोड़ सके।

वस्तुत: भारतेन्दुयुग का काव्य जनकाव्य है, जनहित का काव्य है, जनजागरण का काव्य है तथा हरिश्चन्द्र इस जनजागरण के अग्रदूत हैं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' (1855–1922 ई.)

'प्रेमघन' जी सरयूपारीण ब्राहाण, मिर्जापुर के प्रसिद्ध रईस, महाजन, व्यापारी और जमींदार परिवार में 1855 ई. में उत्पन्न हुए थे। पं. रामानंद पाठक की शिक्षा से इनका साहित्यानुराग जाग्रत हुआ। इन्होंने भारत में विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। सन् 1874 ई. में इन्होंने मिर्जापुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। इसके बाद इन्होंने 'आनन्द कादंबिनी' और 'नागरी' 'नीरद' 'नामक मासिक' और साप्ताहिक पत्रों का संपादन किया। इसके बाद तथा अन्य पत्रों में इनकी सामयिक तथा ब्रजभाषा की उत्तम रचनाएं प्रकाशित हुई है। 'प्रेमधन' में ब्रजभाषा का बड़ा प्रेम था। ये साहित्य सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन के सभापति हुए थे, जो सन् 1912 में कलकत्ता में हुआ था। इनकी रचनाएं 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से सम्मेलन से प्रकाशित हुई है जिनका संपादन इनके पौत्र ने किया है। इनमें जितना साहित्य–प्रेम था उतना ही देशप्रेम भी। भारतेन्दु जी

की प्रवृत्तियां इनमें भी मिलती है और ये उनसे बहुत प्रभावित भी थे। वर्षा बिन्दु, आनन्द अरुणोदय, जीर्ण जनपद, अलौकिक लीला, हार्दिक हर्यादर्श सयर महिमा आदि प्रमुख रचनाएं हैं, जो 'प्रेमघन सर्वस्वं सार' (प्रथम भाग) में संकलित है। इन्होंने कुछ वेदना संबंधी दोहे और श्रृंगारिक कविताएँ भी लिखी, परन्तु राष्ट्रीयता और समाज सुधार उनकी कविता का मुख्य स्वर रहा। समसामयिक घटनाओं और परिस्थितियों को लेकर प्रेमघन ने बहुत कुछ लिखा है। साथ ही कजली और लावनी शैली में लोकगीत भी लिखे, जो अत्यंत मधुरता लिए हैं।

भाषा मुख्यत: ब्रजभाषा रही। प्रेमघन कविता के क्षेत्र में भाषा की शुद्धता और छंद के बंधन पूर्ण निर्वाह के विशेष कायल नहीं थे। उनकी सम सामयिकता संबंधी कविता का एक उदाहण है-

हिन्दुस्तानी भाषा कौन कहां ते आई?
को भाषत किहि ठौर कोउ किन देहू बताई?
कोउ साहिब पुष्प सम नाम धरयो मनमानो।
होत बडन सो भूलहू बड़ीं सहज यह जानो।
हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं।
ले पैठारे बीच कचहरी बिना बिचारेहि।।

• प्रतापनारायण मिश्र (1856 – 1994 ई.)

पं. प्रतापनारायण मिश्र का जन्म सन् 1856 ई. में हुआ था। वे बैजे गांव (जिला उन्नाव) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम संकटाप्रसाद था। मिश्रजी को अंग्रेजी का साधारण ज्ञान था परन्तु अपने परिश्रम से उर्दू, फारसी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मिश्रजी ने सन् 1883 में 'ब्राह्मण' मासिक पत्र निकाला, जिसमें हास्य व्यंग्य पूर्ण शिक्षाप्रद लेख छपते थे। उन दिनों कानपुर में 'लावनी' गाने का बड़ा प्रचलन था। पंडित जी भी इससे प्रेरित होकर कभी-कभी लावनी लिखने लगे। इन्हें नाटक खेलने का बड़ा शौक था। इन्होंने बीस पुस्तकें लिखीं और बारह पुस्तकों का अनुवाद किया। पुस्तकों के नाम ये हैं कलि कौतुक रुपक कलि प्रभाव नाटक, हठी हमीर नाटक, गो-संकट नाटक, जुआरी खुआरी प्रशासन, प्रेम पृष्ठावली, मन की लहर, श्रृंगार विलास, दंगल खंड, लोकोक्ति शतक तृप्यन्ताम, ब्रैडला स्वागत, भारत दुर्दशा, शैव सर्वस्व, प्रताप संग्रह, रसखान शतक, मानस विनोद, वर्णमाला, शिशु विज्ञान, स्वास्थ्य-रक्षा। इनकी रचना बड़ी प्रभावपूर्ण होती थी और हास्य व्यंग्यपूर्ण भी थी।

देश प्रेम की व्यंजना से संबधित इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए -

निरधन दिन दिन होते हैं,
भारत भुव सब भाँति।
ताहि बचाई न कोउ सकत,
निज भुज बुधि बत काँति।

इनकी सम्पूर्ण रचनाओं को नागरी प्रचारिणी सभा ने 'प्रतापनारायण मिश्र ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित किया है।

पं. प्रतापनारायण मिश्र ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान ही समसामयिक समस्याओं को अपनी काव्य रचनाओं में स्थान दिया है। वे अंग्रेजी राज्य की शोषण-नीतियों पर व्यंग्य बाण छोड़ते हुए कहते हैं-

जिन धन धरती हरी सो करिहें कौन भलाई।
बंदर काके भीत कलंदर कोई के भाई।।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इनके विषय में लिखते हैं -''काव्य का लक्ष्य उनके सम्मुख स्पष्ट था -सामाजिक और राष्ट्रीय क्रान्ति। उनके प्रत्येक पद्य में यही राग गूंजता है यही उनकी महिमा है।'' वस्तुत: मिश्रजी भारतेन्दु-युग के प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। 'ब्राह्मण' पत्रिका इनकी साहित्य-साधना का माध्यम था।

• अम्बिकादत्त व्यास (1858 – 1900 ई.)

पंडित अंबिकादत्त व्यास का जन्म सन् 1858 में जयपुर में हुआ और ये दूसरे ही साल अपने पिता पंडित दुर्गादत्त के साथ काशी चले आये। दस वर्ष की अवस्था में ये कविता लिखने लगे थे। व्यासजी ने काशी में संस्कृत का बड़ा गहरा अध्ययन किया था इन्हें अपनी विद्वत्ता और पांडित्य पर भारत – रत्न, बिहार – भूषण आदि उपाधियां प्राप्त हुई थी। व्यासजी ने छोटी बड़ी कुल मिलाकर 78 पुस्तकें लिखीं जिनमें शास्त्र, आयुर्वेद, दर्शन, व्याकरण, समीक्षा, यात्रा, काव्य आदि अनेक विषयों के ग्रंथ हैं। अपने ग्रंथ 'बिहारी बिहार' में इन्होंने बिहारी के से दोहों पर कुंडलियां बनाई थीं। इनका देहावसन 19 नवम्बर सन् 1900 ई. को हुआ। इनकी कविता का एक उदाहरण यहां दिया जाता है –

मधुर दुंदुभी संग मधुर बाजत शहनाई।
मधुर मधुर ही राग मधुरता हिय बगराई।
आंखियन में भरि जात मधुर यह रूप लुनाई।
अन्य मधुरता जहाँ संभुहू गये लुभाई।

वे कवित्त – सवैया शैली में कविता करने में बड़े निपुण थे। इन्होंने ब्रजभाषा का अति सुंदर प्रयोग किया है। श्री ब्यासजी ने भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था व्यक्त की है। और पाश्चात्त्य संस्कृति पर प्रहार किया है। इन्होंने 'वैष्णव पत्रिका' के नाम से एक पत्र निकाला, जो 'मीयूष प्रवाह' के नाम से साहित्य में प्रसिद्ध हुआ। इनके संपादन में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली।

• ठाकुर जगमोहन सिंह (1857 – 1899 ई.)

जगमोहन सिंह जन्म सन् 1857 ई. में विजयराघवगढ़ में हुआ था और इनके पिता ठाकुर सरयूसिंह वहां के राजा थे। सिपाही विद्रोह में उनका राज्य जब्त कर लिया गया। इनकी शिक्षा काशी में हुई। ये 16 वर्ष की अवस्था से ही काव्य करने लगे थे और उसी समय ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के संपर्क में आये। ये तहसीलदार फिर असिस्टेंट कमिशनर के पद पर नियुक्त किये गये। सरकारी नौकरी में रह कर भी ये साहित्य सेवा करते रहे। इनका स्वर्गवास सन् 1898 ई. में हुआ। इनके बनाये हुए ग्रंथों के नाम हैं श्यामा स्वप्न, श्याम सरोजिनी, प्रेम – संपत्तिलता मेघदूत, ऋतुसंहार, कुमारसंभव, प्रेमहजारा, सज्जनाष्टक प्रलय, ज्ञान प्रदीपिका, सांख्य सूत्रों की टीका, वेदांत सूत्रों (बादरायण) पर टिप्पणी और वानी वार्ड विलाप। इनकी रचनाओं से इनका प्रकृति – प्रेम झलकता है। प्रेम – श्रृंगार वर्णन में सुकुमारता एवं माधुरी इनकी कविताओं में फूटी पड़ती हैं। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इनकी रचना को बड़ा ही सरस बना देता है। उदाहरणार्थ –

उदाहरणार्थ –

'जगमोहन' घोय हया निज हायन
गा तन पाल्यो है प्रेम महा।
सब छोड़ि तुम्हें हम पायो
अहो तम छोडि हमें कहाँ पायो कहा।

• बाबू राधाकृष्ण दास (1865 – 1907 ई.)

राधाकृष्ण दास का जन्म सन् 1865 ई. में हुआ था। ये भारतेन्दु के फुफेरे भाई थे। ये दस महीने के थे तभी माता – पिता का देहांत हो गया था। अत: यह भारतेन्दू के परिवार में ही पले और गुजराती भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया 16 वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक एक उपन्यास लिखा था। इनके द्वारा रचित संपादित, अनुवादित सभी प्रकार के ग्रंथ की संख्या 22 है। इनके अतिरिक्त भी इनके लेख हैं। इनकी ब्रजभाषा की रचना सरस और भावपूर्ण है। उदाहरणार्थ –

उनत सिर गिरि अवलि गगन सों उत्त बतरावत

इत सरवर पाताल भेदि अति छह छहरावत।

मन्द पवन सीरी वह होन लगे पतझार।

पर्णकुटी नरसिंह लसत मनौं कोउ अवतार।

भारतेन्दु युग के अन्य कवियों बाबा सुमेरसिंह, सुधाकर द्विवेदी, रामकृष्ण वर्मा, लाला सीताराम, नवनीत चतुर्वेदी, गोविन्द गिल्लाभाई तथा अन्य समसायसिक कवियों ने भी समस्यापूर्ति के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विषयों पर रचनाएं की। इस प्रकार भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवियों की रचनाओं पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि इनका काव्य नई चेतना के उन्मेष का काव्य है। इस युग में पुराने विषयों की कविताओं के साथ नये विषयों पर कविताएं लिखी गई जिससे नये युग आधुनिक युग का सूत्रपात हुआ।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 भारतेन्दु का जन्म कब हुआ?

प्र. 2 बदरीनरायण चौधरी 'प्रेमधन' का जन्म कहां हुआ?

प्र. 3 प्रतापनरायण मिश्र का प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ कौन सा है?

प्र. 4 अम्बिकादत व्यास का प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ कौन सा है?

प्र. 5 बाबू राधाकृष्ण दास भारतेंदु के क्या लगते थे ?

3.4 सारांश

भारतेंदु युग की सबसे महत्वपूर्ण देन है, गद्य व उसकी अन्य विधाओं का विकास। इस युग में पद्य के साथ गद्य विधा प्रयोग में आयी जिससे मानव के बौद्धिक चिंतन का भी विकास हुआ। कहानी, नाटक, आलोचना आदि विधाओं के विकास की पृष्ठभूमि का भी योग रहा है। भारतेन्दु में गद्य के अन्य अंगों के साथ-साथ आलोचना विधा भी नया रूप धारण कर आगे बढ़ी। उनके स्वरूप और प्रकार में नये तत्वों का समावेश हुआ

3.5 कठिन शब्दावली

कुशलक्षेम - कुशल-मंगल

अग्रिम - पहला, पेशगी

सक्षमता - गुण या भाव

माध्यम - आधार, साधन

चेतना - ज्ञान, स्मृति

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1850 ई.
2. आजमगढ़ में
3. कलि कौतुक
4. बिहारी-बिहार
5. ममेरे-भाई

3.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी का साहित्य का इतिहास।

2. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

3. श्यामचंद्र कपूर, हिंदी साहित्य का इतिहास।

3.8 सात्रिक प्रश्न

प्र०1 भारतेन्दु युगीन साहित्य की विशेषताओं का विवेचन कीजिए ?

प्र०2 आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिशचंद्र के योगदान पर प्रकाश डालिए।

प्र०3 भारतेन्दु युगीन विभिन्न साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान का विवरण दीजिए।

*****

इकाई – 4
भारतेंदुयुगीन साहित्यिक विशेषताएं

संरचना

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 भारतेंदुयुगीन साहित्यिक विशेषताएं

- देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना
- सामाजिक जागरण
- जनवादी साहित्य
- भक्ति भावना।
- श्रृंगारिकता
- हास्य व्यंग्य
- प्रकृति चित्रण
- प्राचीन संस्कृति के प्रति मोह
- समस्या पूर्ति

स्वयं आकलन प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

4.1 भूमिका

इकाई तीन में हमने भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यकार एवं उनकी साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन किया। इकाई चार में हम भारतेन्दु युग के साहित्यकार एवं उनकी साहित्यिक विशेषताओं का विस्तारपूर्वक गहल आपन करेंगे। इसके साथ-साथ हम देश-प्रेम और राष्ट्रीय जागरण तथा समस्यापूर्ति का भी अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इकाई चार का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने मे सक्षम होंगे कि -

1. भारतेन्दु युगीन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?
2. देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की भावना क्या है?
3. सामाजिक जागरण के प्रमुख कारण क्या है?
4. भारतेन्दु युगीन साहित्य में भक्ति भावना एवं श्रृंगारिकता का किस प्रकार समन्वय है?

4.3 भारतेन्दुयुगीन साहित्यिक विशेषताएं

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपनी विशेषताओं के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इस युग के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिशचन्द्र को दिया जाता है क्योंकि उनके आविर्भाव से हिंदी साहित्य में नया बदलाव आया। गद्य

का तथा उसकी विभिन्न विधाओं का जन्म हुआ। स्वही बोली अपने प्रौढ़ रूप को पा सकी। गद्य–पद्य दोनों पर खड़ी बोली में अपना अधिकार कर लिया। पहली बार भारतेन्दु और उनके सामयिक साहित्यकारों में मध्यकालीन बंधन में जकड़ी कविता को मुक्त कराया। अत: आधुनिक युग के प्रारंभिक चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा देना सार्थक ही है।

भारतेन्दु का जन्म 1850 ई. में हुआ था और देहावसान 1885 ई में इस अवधि में ही उनके द्वारा जो साहित्य लिखा गया उसी से प्रेरित होकर भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों प्रेमधन (प्रेमधन अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बालकृष्ण भट्ट आदि) ने साहित्य सृजन किया। वस्तुत: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के केन्द्रीय व्यक्तित्व थे और उनके समसामयिक साहित्यकार उनका मार्गदर्शन अथवा नेतृत्व अपने लिए गौरव की बात समझते थे।

अन्य विद्वान, भारतेन्दु द्वारा सम्पादित 'कविवचन सुधा' के प्रकाशन वर्ष (1868 ई.) से 'सरस्वती' प्रकाशन वर्ष (1900 ई.) तक भारतेन्दु–युग की सीमावधि मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने सन् 1870 से 1900 तक डॉ. केसरीनारायण शुक्ल ने 1865 से 1900 ई. तथा भारतेन्दु युग की व्याप्ति मानी है।

डॉ. बच्चन सिंह आधुनिक काल की पहली मंजिल को सन् 1857 से 1900 ई. तक मानते हुए इसे 'पुनर्जागरण काल' की संज्ञा देते हैं।

भारतेन्दु युग को 'संक्रमण काल' पुनरुत्थान, नवजागरण तथा 'परिवर्तन काल' की संज्ञाएं भी दी हैं। ये नाम औचित्यपूर्ण नहीं क्योकि संक्रमण तथा परिवर्तन तो प्रत्येक साहित्यिक युग के साथ जुड़े ही रहते हैं।

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त भारतेंदु युग को समाज, संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रवर्तित नए आदर्शवादी आंदोलनों से प्रभावित होने के कारण इसे 'आदर्शवादी काव्य परंपरा' की संज्ञा देते हैं परंतु आदर्शवादी काव्य परंपरा भक्तिकाल में भी व्याप्त थी। अत: इस कालखंड को आदर्शवादी काव्य–परंपरा नाम देना भी उपयुक्त नहीं है।

निष्कर्षत: साहित्य क्षेत्र की सीमाओं के अन्तर्गत ही यदि विचार किया जाए और साहित्यकार के रूप में भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृतित्व की गरिमा को देखें जो सन् 1650 से 1900 तक के पचास वर्षो काल–खण्ड के लिए 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा ही सर्वाधिक उपयुक्त है। यही अभिधान सर्वाधिक मान्य और प्रचलित भी है और यदि प्रवृत्ति की प्रमुखता के आधार पर ही नामकरण संगत प्रतीत हो तो इसे 'राष्ट्रीय चेतनापरक युग' का अभिधान दिया जा सकता है। स्वाधीनता संघर्ष युग की प्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दु युग में ही मिलती है। इस युग के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

● **देश–प्रेम और राष्ट्रीय चेतना –** भारतेन्दुयुगीन काव्य को 'राष्ट्रीय चेतनापरक काव्य' की संज्ञा दी जाती है और इस संज्ञा की सारवत्ता इस तथ्य से होती है कि इस काल की कविता की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता इसमें व्यक्त देश–भक्ति एवं राष्ट्रीय भावना है। भारतेन्दु हरिशचंद्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम राष्ट्रीय चेतना के कवि है। उनकी काव्य–रचनाओं तथा नाटकों में देश–प्रेम का स्वर सबसे ऊंचा है। प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' तथा अन्य समसामयिक कवियों की कविताओं (एवं गद्य–रचनाओं) में भी यह स्वर बराबर मुखरित हुआ है। ये कवि अंग्रेजी शासन की शोषण की नीति का विरोध करते हैं। भारत के प्राचीन गौरव एवं महापुरुषों का आख्यान करते हैं, परतन्त्रता के कारणों पर विचार करते है तथा देश के नवयुवकों को प्रबोधित करते हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हिन्दी कविता में पहली बार हुई है, इसमें किंचित् मात्र भी सदेह नहीं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' तथा राधाचरण गोस्वामी भारत को 'रतननि की उपजावनी भूमि' तथा 'उत्तम देश' कहते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'आपसी फूट' को इसके पतन का कारण मानते हैं। 'प्रबोधिनी', कविता में भारतेन्दु देश की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कृष्ण के माध्यम से देश के नवयुवकों को प्रबोधित करते हैं–

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।।

अग्रेजों की कुटिल नीति का उद्घाटन करते हुए कही निर्भीकता से कहते हैं–

भीतर भीतर सब रस चूसै,
बाहर से तन मन धन मूसै।
जाहिर वातन में अति तेज,
क्यों सखि साजन, नहीं अंग्रेज।

नये जमाने की मुकरियों में भी अंग्रेजों के अन्याय, अत्याचार, शोषण, अनीति आदि का पर्दाफाश करता है। इन मुकरियों में व्यंग्य की धार भी तीखी है। विदेशी शासन द्वारा दी जाने वाली पदवियों उपधियों आदि पर उनका व्यंग्य उनकी राष्ट्रीय भावना को ही उजागर करता है–

इनकी उनकी खिदमत करो।
रुपया देते देते मरो।
तब आवै मोहि करन खराब।
क्यों सखि सज्जन, नहि खिताब।

भारतेन्दुयुगीन राजभक्ति विषयक कविताओं के आधार पर कई समीक्षक इस युग के कवियों विशेष रूप से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को 'राजभक्त' तथा 'अग्रेजों का प्रशंसक' मानते हैं। परन्तु भारतेन्दुयुगीन कवियों को 'देशभक्त' न कहकर उन्हें 'अंग्रेजभक्त' कहना उनके प्रति अन्याय करना होगा।

● **सामाजिक जागरण–** देशप्रेम और सामाजिक जागरण का धनिष्ठ सम्बन्ध है। देशभक्त कवि ही समाज की विकृतियों एवं विसंगतियों का क्षय देखना चाहता है। बिना समाज–सुधार और सामाजिक जागरण के देश की स्वतंत्रता संभव ही नहीं। भारतेन्दु–युग का कवि इस दावित्व के प्रति सजग है। इसीलिए वह नारी शिक्षा का समर्थन करता है, वर्ण–व्यवस्था और जाति प्रथा का विरोध करता है। बाल–विवाह एवं अनमेल विवाह का निषेध करता है और ऐसे ही समाज–सुधार सम्बन्धी अन्य विषयों को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाता है। प्रतापनारायण मिश्र विधवाओं की करुण दशा का अंकन करते हैं, भारतेन्दु वर्ण– व्यवस्था की संकीर्णता पर प्रहार करते हैं। समाज और देश को भेदभाव छोड़कर एक मत हो चलने का सन्देश भारतेन्दु इन शब्दों में देते हैं–

होइ एक मत भाई सबै अब
छोहडु चाल कुचाल हो दुई रंगी।

भारतेन्दुकालीन कविता अपने समय के अनेक समाज सुधारकों के विचारों से प्रभावित है। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता, विधवा–विवाह का समर्थन, बाल विवाह, वर्ण भेद और त्याग छुआछूत की भावना का खण्डन आदि विषयों को लेकर होने वाली रचनाएं सुधारवादी प्रवृत्ति का ही निदर्शन है। उदाहरण के लिए–

जन्मपत्र बिनु मिले व्याह नहीं होने देत अब,
बालकपन में व्याहि प्रीति बल नास कियो सब।

सुधारवादी भावना की प्रबलता के कारण इस युग की कविता इत्तिवृत्तात्मक हो गई। परिणामस्वरूप उसने अनुभूति की गहराई, भावों की प्रबलता और सरसता कम और उपदेशात्मकता और प्रचारात्मकता अधिक है।

● **जनवादी साहित्य–** डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में ''भारतेन्दु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज में पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का साहित्य है। भारतेन्दु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे'' इस कथन से सहमति व्यक्त करते हुए शिवकुमार शर्मा ने कहा है ''यह कविता केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का साहित्य है। वास्तव में सामाजिक

असंगतियों, धनिकों की स्वार्थपरता, विदेशी साम्राज्य द्वारा अपनी पूंजीवादी नीतियों और व्यवस्थाओं के माध्यम से भारतीय जनता के शोषण, पुलिस के दमन चक्र और लूट-खसोट तथा विदेशी सभ्यता प्रभावित शिक्षित समाज पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए सामान्य जनसमाज को जागृति का संदेश देने का सबसे पहला प्रयास इसी युग के साहित्य में देखने को मिलता है। भारतेन्दुयुगीन कवियों का उद्देश्य जनजीवन में एक नई चेतना जागृत करना था जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। इन कवियों ने सामाजिक असंगतियों, धनिकों की स्वार्थपरता, अंग्रेजों के शोषण, पुलिस की लूट-खसोट और पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित शिक्षित समाज प. व्यंग्य बाण छोड़ते हुए जनता को जगाया। इनकी जनवादी प्रवृति समाज-सुधार को महत्व देती है।

● **भक्ति भावना** – भारतेन्दुयुगीन कवि आधुनिकता और नवीनता की ओर उन्मुख है, परन्तु अभी वह मध्यकालीन सस्कारों से सर्वथा मुक्त नहीं है। उसमें भक्तिकालीन कवियों की भांति भक्ति के स्वर भी विद्यमान है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाएं उनके राधा-कृष्ण के भक्त होने का जवलन्त प्रमाण है। सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों की तरह वे पदावली लिखते है, जिनमें गोपियों के कृष्ण प्रेम तथा भ्रमरगीत के प्रसंग है। भारतेन्तु बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। निम्न पंक्ति से उनकी राधाकृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा की अभिव्यक्ति मिलती है।-

'मेरे तो साधन एक ही हैं.
जय नन्दलला वृषभानु दुलारी'

प्रेमपन, अम्बिकादत व्यास, राधाकृष्ण दास आदि की रचनाओं में भी कृष्ण स्तुति मिलती है। तोताराम की 'राम रामायण' रामभक्ति विषयक रचना है। कतिपय कवियों ने संसार की असारता तथा माया की निरर्थकता का भी निर्गुण सन्तों की तरह प्रतिपादन किया है। इन कवियों की भक्ति विषयक रचनाओं में परम्परागत भक्ति सम्प्रदायों का अनुसरण मात्र है, कोई विशेष मौलिकता नहीं है। परन्तु एक विशिष्टता स्पष्ट है। इनकी भावना में साम्प्रदायिकता न होकर उदारता, रूढ़िवादिता तथा बाह्याडम्बरों का विरोध है।

इन कवियों ने भक्ति भावना का देश-प्रेम, से सामंजस्य स्थापित किया है। कवि भारतेन्दु भारत के उद्धार के लिए अपने आराध्यदेव कृष्ण को जगाना चाहते हैं 'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो' थे अन्यन्न भी कहते है 'कहाँ करूनाविधिकेसव, सोया' प्रतापनारायण मिश्र दीनदयाल भगवान की आर्य भारत पर दया चाहते हैं और राधाकृष्ण दास 'दारिद्र हरने के लिए विनय करते हैं। इस प्रकार भारतेन्दुकालीन विश्व भावना मध्यकालीन भक्ति भावना में एक नया अध्याय खोलती है. उसे नया क्षितिज प्रदान करती है। व्यक्ति उद्धार की अपेक्षा उसमें देशोद्धार की कामना है। भक्ति और देश-प्रेम का यह समन्वय भारतेन्दुयुगीन कविता की मौलिक उद्भावना है।

वस्तुत: भारतेन्द्र युग के कवियों के समक्ष भक्तियुग का आदर्श था। इन्होंने पति से राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का चित्रण किया। इनके काव्य में दैन्य एवं आत्म निवेदन का स्वर भी मिलता है। ये कवि ज्ञान, कर्मकाण्ड आदि की प्राय: उपेक्षा करके, संगुणोपासना को महत्त्व देते हैं। इन्होंने माधुर्य भक्ति को ग्रहण किया है।

● **श्रृंगारिकता** – भारतेन्दुयुग में भक्तिकालीन भक्ति-भावना के समानान्तर रीतिकालीन श्रृंगारिकता की सर्वाधि क अभिव्यक्ति हुई है और आधुनिक काल में यह धारा एकदम लुप्त हो जाए, यह सम्भव नहीं था। इस युग के कवियों ने श्रृंगार- भावना को रम्य अभिव्यक्ति दी है। 'भारतेन्दु' की 'प्रेममाधुरी', 'प्रेमतरंग' आदि रचनाओं में प्रेम और श्रृंगार निरुपण में वे रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा स्वच्छंद कवियों के निकट हैं। रीतिबद्ध कवियों की अश्लीलता एवं नग्नता यहां नहीं है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का अनुभूतिपूर्ण एवं मार्मिक वर्णन उनमें देखा जा सकता है। 'प्रेमधन' की 'वर्षा बिन्दु' ठाकुर जगमोहन सिंह की 'प्रेम सम्पत्तिलता', अम्बिकादत्त व्यास की 'प्रेम पचासा' आदि रचनाओं में प्रेम और श्रृंगार का मनोहारी एवं सरस वर्णन मिलता है। तत्कालीन प्रेम-व्यंजना का एक उदाहरण देखिए-

आजु लौं न मिले तो कहा।
हम तो तुमरे सब भांति कहावें।

मेरी उराहनो कछू नाहिं सबै।
फल आपुने भाग को पावैं।
जो हरिचन्द भई सो भई
अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की रीति
बिदा की समै सब कंठ लगावैं।

वस्तुतः भारतेन्दुयुगीन काव्य में परम्परागत श्रृंगारिकता की अभिव्यक्ति हुई है। किंतु इनके श्रृंगार का स्वरुप विशुद्ध है, उसमें नग्नता या अश्लीलता नहीं मिलती है। ये कवि रीतिकालीन श्रृंगारिक काव्य की अपेक्षा भक्तिकालीन से अधिक प्रभावित हुए है। इन्होंने महाकवि सूरदास जैसे भक्त कवियों से प्रेरणा लेकर श्रृंगार काव्य का सृजन किया है।

● **हास्य–व्यंग्य–** भारतेन्दुयुगीन कवियों की रचनाओं में हास्य–व्यंग्य की प्रवृत्ति का भी प्राधान्य है। इसे भी आधुनिक एवं नव्य प्रवृत्ति कहा जा सकता है। रीतिकालीन कविता में हास्य के आलम्बन अत्यन्त सीमित थे। कंजूस, खटमल आदि विषयों पर हास्यपूर्ण रचनाएं ही वहां देखी जा सकती हैं। भारतेन्दु काल में सामाजिक रुढ़ि परम्पराओं एवं अधविश्वासों के साथ–साथ पाश्चात्य सभ्यता और अंग्रेजी शासन की कुटिल शोषणपूर्ण नीति पर व्यंग्य है। हरिश्चिन्द्र प्रतापनारायण मिश्र तथा 'प्रेमघन' इस युग के प्रमुख हास्य व्यंग्य कवि है। भारतेन्दु का हास्य शिष्ट और सोद्देश्य 'बन्दरसभा', 'उर्दू का स्यापा' आदि इसके प्रमाण हैं। 'अंधेर नगरी' आदि प्रहसन नाटकों में हास्य व्यंग्य की प्रचुरता है। नये जमाने फी मुकरियों में उन्होंने समकालीन राजनीतिक असंगतियों पर व्यंग्य किया है। प्रेमघन की 'हास्य बिन्दु' कविता में समसामयिक स्थितियों का विनोदपूर्ण वर्णन हैं। प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में तो हास्य–व्यंग्य की प्रवृत्ति ही प्रमुख है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की एक मुकरी यहा उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है–

धन लेकर कुछ काम न आवे,
ऊँची नीची राह दिखावे।
समय पर साधे गूंगी,
क्यों सखि साजन, नहिं सखि चूंगी।

वस्तुतः भारतेन्दुयुगीन कविता में व्यंग्य विनोद हास्य है, परन्तु वह कहीं भी अश्लील या भदेस नहीं है बल्कि शिष्ट और सभ्य होने के साथ–साथ उद्देश्यपूर्ण भी है।

● **प्रकृति–चित्रण –** प्राकृतिक सौंदर्य का चित्र भी इस काल की रचनाओं की एक प्रमुख विशेषता है। यद्यपि अधिकतर कवियों ने परंपरागत रूप में ही प्रकृति के उद्दीपनात्मक चित्र ही प्रस्तुत किए हैं, फिर भी प्रकृति के अनेक सुन्दर आलम्बनगत चित्रों से युगीन कवियों ने अपने काव्य को सजाया है। ठाकुर जगमोहन सिंह के काव्य से प्रकृति के स्वतन्त्र मनोहारी चित्र देखे जा सकते हैं। भारतेन्दु तथा अम्बिकादत व्यास ने आलम्बन रूप में भी प्रकृति को उकेरा है। 'गंगा–वर्णन', 'यमुना–वर्णन', 'प्रातः स्मीरण', 'होली'(भारतेंदु हरिश्चंद्र), 'पावस पचासा' (अम्बिकादत व्यास), 'मयंक महिमा (प्रेमधन) आदि इस युग की कुछ उल्लेखनीय प्रकृतिपरक रचनाएँ हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह के प्रकृति–चित्रण प्रकृति में उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति तथ्य अभिव्यंजना शक्ति देखी जा सकती है। इस सन्दर्भ में विन्ध्य प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा के संशिलष्ट चित्र, विशेष उल्लेखनीय हैं। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के प्रकृति चित्रण में चित्रात्मकता का जो विकसित रूप मिलता है उसका पूर्वाभास यहाँ द्रष्टव्य है–

पहार अपार कैलास से कोटिन
ऊंची शिखा लगि अंबर चूम।।

...

गिरिजात उतंगत्ता ऊपर, झूम।
प्रकाश पतंग सो चोटिन के
बिकसै अरविन्द मलिंद सुझूम।
लसे कटि मेखला के जगमोहन
कारी घटा घन घोरत घूम।

वस्तुत: इस युग के कवियों ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कम किया है। ये मुख्यत: मानव प्रकृति के ही कवि कहे जा सकते हैं फिर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह जैसे कवियों के काव्य में प्रकृति का भावपूर्ण चित्रण अति सुन्दर बन पहा है।

● **प्राचीन संस्कृति के प्रति मोह –** भारतेन्दु युग की कविता में अपनी संस्कृति के प्रति मोह स्पष्ट लक्षित होता है। अपनी परम्परागत सांस्कृतिक सम्पदा की रक्षा करते हुए नवीनता को अपनाने की ललक के स्वर इस युग की कविता की प्रमुख प्रवृत्ति रही। अपने प्राचीन गौरवमय जीवन को छोड़कर नवीनता को अपनाने की भर्त्सना करते हुए कहा गया है–

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा और मृतक समान है।

बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी सार्थ परम्परा को भुलाकर विदेशी फैशन के प्रति अरुचि प्रकट करते हुए कहा है –

सेल गई बरछी गई, गये तीर तलवार।
..

वस्तुत: इस युग के काव्य में प्राचीनता एवं नवीनता का सुंदर मिश्रण मिलता है। ये कवि एक ओर प्राचीन काव्य की उपदेशात्मकता, नैतिकता, भक्ति भावना आदि को ग्रहण करते हैं और दूसरी ओर राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को अपनी कविता में स्थान देते हैं।

● **समस्या पूर्ति –** समस्या पूर्ति भी एक रीतिकालीन काव्य शैली थी। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने इस काव्य–पद्धति का भरपूर प्रयोग किया है। समस्या–पूर्ति से कवियों की प्रतिभा और 'काव्य–कौशल की परख हो जाती है। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास आदि कवियों ने समस्या–पूर्ति शैली की कविताएं लिखी हैं। 'भारतेन्दु ग्रंथावली' में भारतेन्दु जी की समस्या–पूर्तियां संकलित है। अम्बिकादत्त व्यास का 'समस्यापूर्ति सर्वस्व' तथा गोविन्द गिल्लाभाई का 'समस्यापूर्ति प्रदीप' उल्लेखनीय संग्रह है। 'प्रेमघन' की निम्नलिखित समस्या पूर्ति अपने आनुप्रासिक सौष्ठव के कारण पर्यान्त लोकप्रिय रही थी–

बगियान बसन्त बसेरो कियो,
बसिये तेहि त्यागि तपाइए ना।
बिन काम कुतूहल के जो बने,
तिन बीच वियोग बुलाइए ना।
'घन प्रेम' बढ़ाय के प्रेम,
अहो! विथा वारि वृथा बरसाइए ना।
चित चैत की चांदनी चाह भरी,
चरचा चलिबे की चलाइए ना।

समस्या – पूर्ति शैली की इन रचनाओं का विषय प्राय: श्रृंगार ही था फिर भी नये सामाजिक विषय में इनमें प्रवेश पा रहे थे।

● इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता – इस युग के काव्य में इतिवृत्तात्मकता को प्रधानता मिली है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके कई समकालीन कवि उपदेशात्मक एवं सुधारवादी भावना को इतना अधिक महत्व देते हैं कि वे कवि उपदेशक एवं सुधारक बन जाते हैं। ये अनुभूति की गहनता 'का स्थान तुकबन्दी' को देने लगते हैं और उनकी कविताएं प्रचारात्मक-सी लगती हैं उनमें सरसता कम और नीरसता अधिक मिलती है।

● भाषा और शैली – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'हिन्दी भाषा' कविता में 'निज भाषा उन्नति अहै' जैसी पंक्तियों के माध्यम से अपने हिन्दी प्रेम को व्यक्त करते हैं। उनके समसामयिक सभी कवियों में भाषा सम्बन्धी यह चेतना विद्यमान थी। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने पूर्ववर्ती ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना की हैं। ब्रजभाषा के साहित्यिक सौष्ठव, माधुर्य और लालित्य से वे अत्यधिक प्रभावित थे, अत: वे उसके प्रति मोह को नहीं छोड़ आएं कुछेक रचनाएँ उन्होंने खड़ी बोली में लिखी हैं और उन्होंने अवधी भाषा को भी प्रयुक्त किया है. परन्तु इस युग की मुख्य काव्य-भाषा ब्रजभाषा ही रही है। गद्य के क्षेत्र में इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया है। प्रसंगानुकूल कोमलकान्त पदावली, ओजपूर्ण लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग इनकी भाषा की विशेषताएँ हैं। भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन आदि की भाषा में आलंकारिकता भी देखी जा सकती है।

इस युग के कुछ कवियों ने खड़ी बोली का भी काव्य-भाषा के रूप में उपयोग अवश्य किया है, परिमाण में पकी है। भारतेन्दु की कविता से खड़ी बोली का एक उदाहरण देखिए-

सांझ सवेरे पंछी सच क्या कहते हैं कुछ मेरा है।

हम सब इक दिन उड़ जाएंगे यह दिन चार बसेरा है।

काव्य शैली की दृष्टि से इस युग में वर्णनात्मक (इतिवृत्तात्मक) तथा भाव प्रधान दोनों ही रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

● छन्द और अलंकार – इस युग की अधिकांश रचनाएँ पद शैली में लिखी गई है और ये गीतिकाव्य की श्रेणी में आती है। परम्परा छन्दों में कवियों ने घोर सोरठा, चौपाई, रोला, हरिगीतिका, कुण्डलिया, कवित, सर्व यशस्य, मन्दाक्रान्ता शिखरिणी आदि मात्रिक वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु ने उर्दू तथा बंगला छन्दों में कुछ रचनाएँ लिखी है तथा लावनी, कजली आदि लोक का भी किया है। अलंकार प्रयोग से कवियों अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों तथा उत्प्रेक्षण, उपमा आदि अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है। परन्तु यहां आशय अलंकरण की कवियों में सहमत और स्वाभाविकता का अधिक ध्यान रखा है। छन्द-प्रयोग की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य की अपेक्षा भारतेन्दुयुगीन काव्य में वैविध्य मिलता है।

● काव्य-रूप – भारतेन्दुकालीन कवियों की रचनाएँ प्रमुख रूप से काव्य की श्रेणी में आती हैं। इन कवियों में मुख्यत: मुक्तक एवं गीति शैली के अंतर्गत आते हैं। इन कवियों में मुख्यत: मुक्तक एवं मुक्तक गीति-शैली को अपनाया है। इनके पदों में भावप्रवणता, गेयात्मकता के तत्व निहित है। 'प्रेमघन' रचित 'जीर्ण जनपद' अंबिका व्यासकृत 'कंस वध' (अपूर्ण) आदि प्रक्षणात्मक कृतियां हनी-गिनी ही है। इसके अतिरिक्त सतसई तथा शतक परंपरा की रचनाएं भी भारतेन्दु युग में मिलती है। प्रतापनारायण मिश्र ने उर्दू कविता (शेर, भरसिया आदि) की शैलियों का प्रयोग किया है। समग्रत: इस युग के काव्य को परम्परागत छंदोबद्ध मुस्तक काव्य की श्रेणी में ही रखा जा सकता है।

आधुनिक काव्य की प्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दुयुगीन काव्य में ही प्राप्त होती है। यह नवीन काव्यधारा राष्ट्रीय चेतनापरक तथा आदर्शवादी है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय विचारधारा को इसने प्राण-रस प्राप्त किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक भारतेन्दुयुगीन काव्य को एक विराट् परिवर्तन कहते हैं तथा इसे भाव, विषय, भाषा और अविव्यंजना शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय मानते हैं। इस परिवर्तन से आधुनिक युग का शुभारम्भ होता है तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युग प्रवर्तक साहित्यकार है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 भारतेन्दु की प्रसिद्ध काव्य कृति का नाम बताइए?

प्र. 2 भारतेन्दुयुगीन की प्रमुख साहित्यिक वृत्ति क्या है?

प्र. 3 भारतेन्दु का जन्म कहाँ हुआ?

प्र. 4 भारतेन्दु की प्रमुख पत्रिका का नाम क्या है?

प्र. 5 सन् 1936 में किस उपन्यास का प्रकाशन हुआ?

4.4 सारांश

भारतेन्दुयुगीन कविता की मुख्य विशेषताएँ इस युग की अधिकांश कविता वस्तुनिष्ठ एवम् वर्णनात्मक है। छंद, भाषा एवं अभिव्यंजना पद्धति में प्राचीनता अधिक है, नवीनता के दर्शन कम। खड़ी बोली का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था किन्तु कविता के क्षेत्र में ब्रज भाषा ही सर्वमान्य भाषा के रूप में विख्यात रही। इस काल में हिंदी के प्रचार-प्रसार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योगदान दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कविवचन सुधा हरिश्चंद्र मैगजीन आदि अग्रणी हैं।

4.5 कठिन शब्दावली

दुर्दशा - दुर्गति, विपत्ति

लावनी - देशी राज्यों के अन्तर्गत एक उपराग

कौतुक - कुतुहल

हठी - जिद्दी, टेकी

विलास - हर्ष, हाव-भाव

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. प्रेममालिका
2. राजभक्ति
3. काशी में
4. हरिश्चंद्रिका
5. गोदान

4.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास।
2. रामकृष्ण वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का उद्भव एवं विकास।

4.8 सात्रिक प्रश्न

1. भारतेन्दु काल की प्रमुख विशेषताओं का विस्तार पूर्वक विवेचन कीजिए।
2. भारतेन्दु युग की काल सीमा सहित भारतेन्दु का साहित्यिक परिचय दीजिए?
3. भारतेन्दु के जीवन परिचय के साथ विभिन्न विधाओं में उनके योगदान का विवेचन कीजिए?

*****

इकाई – 5
द्विवेदी युग : प्रमुख साहित्यकार

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 द्विवेदी युग : प्रमुख साहित्यकार

5.3.1 द्विवेदी युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ

- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध
- मैथिलीशरण गुप्त
- रामनरेश त्रिपाठी
- नाथू राम शर्मा शंकर
- माखनलाल चतुर्वेदी

स्वयं आकलन प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दावली

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भित पुस्तकें

5.8 सात्रिक प्रश्न

5.1 भूमिका

इकाई चार में हमने भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यकारों एवं उनकी साहित्यिक विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई पाँच में हम द्विपेदी युग के प्रमुख साहित्यकार एवं उनकी रचनाओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही हम हिन्दी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान का भी अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इकाई पाँच का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. द्विवेदी की समय सीमा क्या है?
2. द्विवेदी के प्रमुख साहित्यकार कौन–कौन है?
3. द्विवेदी युग की प्रमुख रचनाएँ कौन–कौन सी है?
4. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

5.3 द्विवेदी युग : प्रमुख साहित्यकार

द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य को 'पूर्ववती भारतेन्दुयुगीन परम्परा का विकास और परिष्कार कहा जा सकता है। पटना होती आन्दोलन की सफलता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी इस युग की समस्त साहित्यिक चेतना के सूत्रधार थे, प्रेरक भी और अनुशासक भी। इस से छायावाद–पूर्व आधुनिक हिन्दी काव्य का द्वितीय उत्थान 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। यहां द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली के कतिपय उल्लेखनीय कवियों का विवेचन किया जाएगा। प्रतिनिधि रचनाकारों में प्रमुख कवि आचार्य

महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, पं. रामचरित उपाध्याय, पं. लोचन प्रसाद पाडेय, राय देवी प्रसाद पूर्ण, पं. नाथू राम शर्मा, पं. गया प्रसाद शुक्ल, 'स्नेही', पं. राम नरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन दीन, पं. रूप नारायण पाडेय, पं. सत्य नारायण कविरत्न, वियोगी हरि, अयोध्या सिंह उपाध्याय, गिरिधर शर्मा, नवरत्न, सैयद अमीर अली मीर, कामता प्रसाद गुरु, बाल मुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाडेय तथा ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि है।

5.3.1 द्विवेदी युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ

श्रीधर पाठक (सन् 1860-1926) - ब्रजभाषा वाले साहित्यकारों में श्रीधर पाठक अग्रगण्य है। इनका जन्म आगरा के जोभरी गांव में 11 जनवरी, 1860 को हुआ था। पाठक जी ने मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार की रचनाएं हिन्दी साहित्य को ही हैं। इन्होंने अंग्रेजी के कवि गोल्डस्मिथ की तीन रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है- 'एकांतवासी योगी' ('हरमिट'), 'ऊजड़ ग्राम, ('डजर्टि विलेज') तथा 'श्रान्त पथिक' (ट्रैवलर)। इसके अतिरिक्त इन्होंने मौलिक कविताएं भी लिखी हैं जिनमें 'कश्मीर सुषमा', 'देहरादून, 'गोपिका गीत', 'भारत गीत', 'गोखले प्रशस्ति', 'जगत सचाई सार', 'स्वर्गीय वीणा', 'भक्ति विभाग' आदि उल्लेखनीय है। आचार्य शुक्ल श्रीधर पाठक को स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियां मिलती हैं। समाज-सुधार तथा राष्ट्रीय भावना जैसी प्रवृत्तियां भी उनके काव्य में प्राप्त होते हैं। इनकी भाषा-शैली सरस और प्रवाहपूर्ण है।

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप संवारति।
पल-पल पलठति भैव छनिक छाकैं छिम छिम धारति।
बिहारति विविध विलास भरी जीवन के भव सनि।
ललकति बिलकाति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठनि।।

श्रीधर पाठक जी ने आधुनिक युग में खड़ी बोली के आंदोलन को सफल बनाने में मोगदान दिया और सबल रूप में प्रतिष्ठित किया।

● **आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (सन् 1864-1938) -** आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में 9 मई, 1864 ई. को हुआ। पिता हनुमंत द्विवेदी का असामयिक निधन हो जाने के कारण उन्होंने शिक्षा के बाद नौकरी कर ली तथा साथ ही अध्ययन भी जारी रखा। बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का इन्हें अच्छा ज्ञान था। हिन्दी साहित्य में वे कवि के रूप में उतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना आचार्य एवं कवि निर्माता के रूप में हैं। द्विवेदी जी सन् 1903 में 'सरस्वती' के संपादक बने और उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से गद्य तथा पद्य की भाषा का परिमार्जन कर खड़ी बोली को व्याकरण की दृष्टि से व्यवस्थित किया। मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों को हिन्दी में लाने का श्रेय श्री द्विवेदी जी को प्राप्त है। 'कुमारसम्भव सार' नाम से इन्होंने कालिदास के 'कुमारसम्भव' काव्य के पांच संगों का हिन्दी में अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने जगन्नाथ कृत संस्कृत की 'गंगालहरी' का भी हिन्दी में अनुवाद किया। 'काव्य मंजूषा', 'सुमन' तथा 'कविता कलाप', 'द्विवेदी काव्यमाला' आदि इनके मौलि काव्य संकलन हैं। कविताओं के माध्यम से उन्होंने कविता के आदर्शो की स्थापना का ही अधिक प्रयास किया है। समाज सुधार, अतिशय, श्रृंगारिकता, राष्ट्रीय-भावना आदि इनकी कविता के विषय थे। इनकी शैली इतिवृत्तात्मक तथा वर्णनात्मक है, जिसका समस्त द्विवेदीयुगीन काव्य पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। वस्तुतः महाप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी काव्य' को एक दिशा प्रदान की है। इसी से इनके नाम से ही यह प्रख्यात है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए-

चाहे कुटी अति घने वन में बनावे,
चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे।
चाहे कभी नर नये पट भी न पावे,
सेवा प्रभो! पर न तू पर की करावे।

● **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सन 1865–1947)** भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी काव्य में 'हरिऔध' का स्थान उल्लेखनीय है। इनका जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद स्थान पर हुआ। इनकी माता का नाम रूक्मिणी देवी तथा पिता का नाम भोलासिंह उपाध्याय था। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं के ये अच्छे ज्ञाता थे। सरकारी नौकरी से पेन्शन पाकर सन् 1924 में उपाध्यायजी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में अध्यापन करने लगे। वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके थे। इन्होंने गए तथा पद्य दानों में अपनी लेखनी उपाध्यायजी की प्रमुख काव्य कृतियां है प्रियनिवास, वैदेही, वनवास, परिजात, पद्य, प्रसून, रसकलश, रसिक रहस्य, पेसप्नपंच, बोलचाल, कल्पलता, फूल पत्ते, ऋतुमुकुर, प्रेमाम्बु–वारिधि, प्रेमाम्बुप्रवाह, चोखे–चौपदे, चुमते चौपदे, ग्राम–गीत, मर्मस्पर्श आदि। उपाध्याय जी ने उपन्यास तथा आलोचनात्मक ग्रंथों की भी रचना की है। 'अधखिला फूल', 'ठेठ हिन्दी का' तथा 'वेनिस का बांका' (अनूदित) इनके उपन्यास हैं। 'कबीर वचनावली' तथा हिन्दी भाषा व साहित्य का विकास इनकी आलोचनात्मक रचनाएं हैं। उपाध्यायजी का सर्वाधिक महत्व कविता के क्षेत्र में ही है। उन्होंने मुक्तक एवं प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएं की हैं। मुक्तकों में 'चौखे–चौपदे' तथा 'चुभते चौपदे' में उन्होंने उर्दू के छन्दों में काव्य रचना की है। इनमें भावों के साथ मुहावरों का चमत्कार दर्शनीय है।

'प्रियप्रवास' (1914 ई.) सत्रह सगों में विभाजित एक महाकाव्य है। यह खड़ीबोली का पहला महाकाव्य है। इसमें कृष्ण के लोकरंजक रूप को न दिखाकर हरिऔध ने उनके लोकरक्षक रूप के दर्शन करवाए हैं तथा राधा भी मध्यकालीन कवियों की राधा से भिन्न गंभीर एवं विश्व हितैषिणी प्रौढ़ रमणी के रूप में प्रस्तुत है। राधा की कामना है – 'प्यारे जावें जग हित करें, गेह चाहे न आवें।' 'प्रियप्रवास' के प्रकृति चित्रण तथा भाषा शैली का एक नमूना देखिए–

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी– कुल वल्लभ की प्रभा।

'वैदेही वनवास' में भी वाल्मीकि रामायण पर आधारित सीता–निर्वासन के प्रसंग को युगानुकूल अभिव्यक्ति प्रदान करने में हरिऔध को सफलता प्राप्त हुई है। वहां सीता को धोखे से निर्वासित नहीं किया जाता, प्रत्युत सीता लोकापवाद–जन्य गम्भीर परिस्थिति को देखते हुए स्वयं वन जाने को उद्यत हो जाती है। परिजात के पन्द्रह सर्गो में विभिन्न आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं धार्मिक विषयों को प्रस्तुत किया जाता है। वस्तुतः खड़ीबोली को काव्य–भाषा के अनुरूप सामर्थ्य प्रदान करने वाले कवियों में 'हरिऔध' चिरस्मरणीय हैं।

● **बालमुकुन्द गुप्त (सन् 1865–1907)–** स्वातंत्र्य–संघर्षयुगीन देश–प्रेम और हिन्दी प्रेम को स्वर देने वाले बालमुकुन्द गुप्त का जन्म सन् 1865 में हरियाणा प्रदेश के रोहतक जिले के गुड़ियाना गांव में हुआ। रचनाकाल भारतेन्दु–युग और द्विवेदी–युग दोनों में व्याप्त है। हिन्दी में आने से पूर्व वे कई ऊर्दू पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन कर चुके थे। हिन्दी में उन्होंने 'भारत मित्र' का सफलतापूर्वक सम्पादक किया। वे हिन्दी के निर्भीक पत्रकार, निबंध लेखक तथा कवि थे। कविता के क्षेत्र में यद्यपि उन्हें अधिक ख्याति नहीं मिली, तथा युगानुकूल विषयों को प्रतिपाद्य बनाकर गुप्तजी ने कई महत्त्वपूर्ण कविताएं लिखी थीं। समाज की आर्थिक स्थिति देश की पराधीनता आदि विषयों की ओर उनका विशेष ध्यान रहा है। वे भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे तथा अंग्रेजों की भारतीयता विरोधी शिक्षा नीति के प्रति चिन्तित थे। उन्होंने बजभाषा और खड़ीबोली दोनों में काव्य रचना की है। 'स्फुट, कविता में इनकी कविताएं संकलित हैं। बड़े लाट कर्जन', 'सच्चाई', 'पालिटिकल होली', 'आशीर्वाद' आदि कविताओं में सरकार और विशेष रूप से लार्ड कर्जन पर व्यंग्य किये हैं। उनकी खड़ी बोली की कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

बाबा उनसे कह वो जो सीमा की रक्षा करते हैं।
लोहे की सीमा कर लेने की चिन्ता करते हैं।

'आशीर्वाद' कविता में कवि भारतीयों को स्वावलम्बन का संदेश इस प्रकार देता है-

अपना बोया आप ही खायें, अपना कपड़ा आप बनावें।

बड़े सवा अपना व्यापार, चारों विस हो मौज बहार।

माल विदेशी दूर भगायें, अपना चरा आप चलावें।

● **मैथिलीशरण गुप्त (सन् 1886 – 1964) –** द्विवेदीयुगीन काव्य-चेतना का प्रतिनिधित मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में मिलता है। गुप्तजी आधुनिक युग के समन्वयवादी राष्ट्रीय कवि हैं। इनका जन्म चिरगांव जिला झांसी में 3 अगस्त, 1886 को सेठ रामचरण गुप्त (उपनाम कनकलता) के घर में हुआ था। सेठजी राम के अनन्य भक्त, काव्य-मर्मज्ञ तथा अच्छे कवि थे। गुप्तजी को रामभक्ति एवं कविता के संस्कार पैतृक दाय के रूप में प्राप्त हुए थे। गुप्तजी ने विद्यालयी शिक्षा प्राप्त न करके घर पर ही मुंशी अजमेरी की संगति में अध्ययन किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से इनकी काव्य-प्रतिभा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ तथा उन्ही निर्देशित आदशों पर गुप्तजी ने काव्य-रचना भी की है।

मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य विशाल है। गुप्तजी ने द्विवेदी युग में लिखना आरम्भ किया और स्वतंत्रयोत्तर काल तक आजीवन साहित्यसाधना में निरन्तर लगे रहे। उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक, गीति-काव्य मौलिक तथा अनूदित सभी प्रकार की रचनाएं लिखी हैं। उनके मौलिक पथ चालीस के लगभग हैं, जिनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं- 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'भारत भारती', 'किसान', 'पंचवटी', 'अनघ', 'हिन्दू', 'त्रिपथगा', 'गुरुकुल', 'विकट भुट', 'साकेत' 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज', नहुष, 'जय भारत', 'विष्णुप्रिया', 'प्रदक्षिणा', 'तिलोत्तमा', 'काबा और कर्बला', 'मंगलघट', 'चन्द्रहास' आदि। गुप्तजी का काव्य वैदिक युग से लेकर वर्तमान युग तक की भारतीय संस्कृति के विविध रूपों का चित्राधार है।

विषयवस्तु एवं शैली आदि की दृष्टि से 'भारत-भारती', 'साकेत', 'यशोधरा', 'पंचवटी', तथा 'द्वापर' गुप्तजी की महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। गुप्तजी की लोकप्रियता का आरम्भ 'भारत-भारती' से होता है। इसमें गुप्तजी ने भारतवासियों को सामूहिक रूप से राष्ट्र की समस्याओं पर विचार करने के लिए आमन्त्रित किया है-

हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।

आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।

'साकेत' गुप्तजी का महाकाव्य है। 'कथा रामायण की ही है, पर कवि ने उसे मौलिक उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है। उपेक्षिता उर्मिला साकेत की नायिका है, जिसके विरह-वर्णन को काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। 'पंचवटी' में प्रकृति-चित्रण के साथ लक्ष्मण का चरित्रांकन सुन्दर रूप से हुआ है। 'यशोधरा' परम्परागत कथानक पर आधारित नवीन परिधान में सुसज्जित मौलिक उद्भावनाओं से युक्त एक सफल कलाकृति है। 'द्वापर' में बलराम को यहां प्रगतिशील क्रान्तिकारी के रूप में अंकित किया गया है। एक उद्धरण देखिए -

एक एक सौ सौ अन्यायी कंसों को ललकारी।

मातृभूमि के ऊपर धन जीवन सब बारो।

उनकी रचनाओं में व्याप्त देशानुराग की भावनाओं एवं सामयिक समस्याओं के चित्रण को देखते हुए हम कह सकते हैं कि तुलसी की भांति ही उनके काव्य में समन्वयवादी आदर्श भी लक्षित होता है। इस दृष्टि में गुप्तजी को आधुनिक युग का तुलसी कहना भी अनुपयुक्त न होगा।

'रामनरेश' त्रिपाठी (सन् 1889-1962) द्विवेदीयुगीन खड़ीबोली के प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवि रामनरेश त्रिपाठी का जन्म सन् 1889 में उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में कोइरीपुर नामक गांव के एक कृषक परिवार में हुआ। वे उन्मुक्त-काव्य शैली के प्रणेता थे।

● **रामनरेश त्रिपाठी** सुकवि, समालोचक, नाटककार एवं उपन्यासकार हैं। इनकी रचनाएं हैं- मिलन (1917 ई.) पथिक (1902 ई.) स्वप्न (1929 ई.) (खण्डकाव्य) मानसी (फुटकर), सुभद्रा, प्रेमलोक, जयन्त (नाटक), वीरांगना,

पिशाचिनी, वीरबाला (उपन्यास) तुलसीदास (आलोचना) तथा कविता-कौमुदी और ग्राम गीत (संकलन)। कविता कौमुदी के सात खण्डों में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, बंगला आदि विभिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि कवियों का परिचय तथा चुनी हुई कविताएं हैं। हिन्दी में यह अपने प्रकार का एक ही संकलन है। 'ग्राम गीत' में, ग्राम्य गीतों का संकलन है। त्रिपाठी जी के प्रार्थना गीत तथा राष्ट्र प्रेम के गीत काफी प्रसिद्ध रहे हैं। उनका एक प्रार्थना गीत 'हे प्रभो, आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए' अपने समय में बहुत लोकप्रिय हुआ था। त्रिपाठीजी के काव्य की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

सच्चा प्रेम वही है जिसकी तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।

त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्रांण, निछावर।

त्रिपाठीजी के काव्य के भाव और उसकी भाषा के आधार पर यह कहना समीचीन होगा कि उनके काव्य में श्रीधर पाठक और महावीरप्रसाद द्विवेदी इन दोनों का समन्वय-सा प्रतीत होता है।

● **सियारामशरण गुप्त (सन् 1895-1963 ई.) –** मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् 1895 चिरगांव (झांसी) में हुआ था। गुप्तजी साहित्य-सृजन को अपना मुख्य लक्ष्य मानते थे। रोग में आजीवन जूझते हुए वे लेखनी चलाते रहे। वे भावुक तथा सहृदय कवि थे। उनमें जितना गाम्भीर्य था उतनी ही सरलता। गुप्तजी ने द्विवेदीकाल, छायावादी युग तथा प्रगतिवादी युग में रचना की है तथा समसामयिक वातावरण के प्रभाव से अपने साहित्य-यात्रा का पथ बदलते रहे हैं। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक तथा निबन्धों की सर्जना के साथ-साथ संस्कृत तथा पालि से कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है। 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'आर्य' 'विषाद', 'दूर्वादल', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'मृगसाथी', 'बापू', 'दैनिकी', 'नोआरवली में', 'नकूल', 'जयहिंदी', 'सीता-संवाद', 'अमृतपुत्र', 'गोपिका' तथा 'सन्मुक्त' गुप्तजी की काव्य-रचनाएं हैं। 'गोदान', 'अन्तिम आकांक्षा' तथा 'नारी' इनके उपन्यास हैं। इनकी अन्य कृतियां हैं 'झूठ-सच' (निबन्ध-संग्रह 'पुण्यपर्व' (नाटक), 'मानुषी' (कहानी', 'गीता-संवाद', 'हमारी प्रार्थना' तथा 'बुद्धवचन' (अनुवाद)। भाषा, छन्द-प्रयोग आदि की दृष्टि से वे छायावाद के निकट हैं। उनका काव्य कोमल तथा मधुर है। गुप्तजी की कविता की पंक्तियां देखिए -

पशु-से बच भी जाएं, बचा है कीन मनुज से।

आह। मभुज के लिए मनुज है क्रूर दनुज से।

इनके अतिरिक्त रामचरित उपाध्याय (सन् 1872-1938) प्रारम्भ में पुराने ढंग की कविताएं लिखते थे, बाद में द्विवेदी जी से प्रोत्साहन पाकर नये ढंग की कविता लिखने लगे। 'रामचरित चिन्तामणि' इनका प्रसिद्व प्रबन्धकाव्य है। 'सूक्ति मुक्तावली' 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'देवी द्रौपदी', 'भारत' 'भक्ति', 'विचित्र विवाह', 'रामचरित चन्द्रिका' आदि इनकी अन्य काव्य-स्चनाएं है। इनकी रचनाओं में द्विवेदीयुर काव्य-प्रवृत्तियां सर्वत्र विद्यमान है। गयाप्रसाद 'ुक्ल 'सनेही' (1883-1972 ई.) का ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में समानाधिकार से लिखने वाले कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है। 'कृषक क्रन्दन', 'राष्ट्रीय वीणा! 'त्रिशूल', 'तरंग', 'करुणा कादम्बिनी' आदि इनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। श्रृंगार और देशानुराग दोनों विषयों पर इन्हें मार्मिक और ओजस्वी कविताएं लिखी हैं। इनके प्रयाण गीत और बलिदान गीत प्रसिद्ध हैं। गोपालशरण सिंह (सन् 1891-1960) खड़ीबोली में कवित्त और सवैया लिखने सिद्धहस्त थे। 'ज्योतिष्मती' तथा 'सचिता' इनकी प्रारम्भिक रचनाएं हैं। 'कादम्बिनी' में इनकी प्रकृति-चित्रण विषयक सुन्दर कविताएं हैं। 'मानवी' में नारी जीवन की व्याख्या है। 'जगदालोक' (प्रबन्ध काव्य), 'सुमना', 'विश्व गीत' आदि इनकी अन्य रचनाएं हैं।

● **नाथूराम शंकर शर्मा (1859-1932) –** शंकरजी का समय भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग और उसके बाद तक आता है। शंकरजी की समस्या पूर्तियां तो प्रसिद्ध ही हैं। इन्होंने ब्रज और खड़ी बोली दोनों ही में सुन्दर रचना की। इनकी रचना में स्पष्ट उद्‌बोधन या उपदपेश नहीं वरन् तीव्र एवं तीखे व्यंग्य हैं। हास्य विनोद भी इनकी रचनाओं में खूब मिलता है। इनकी रचनाओं में विविध रस मिलते हैं। नखशिख-सौन्दर्य चित्रण में कल्पना की उड़ान सराहनीय है।

'शंकर' की रचना खड़ी बोली में होते हुए भी मुख्य प्रवृति के अनुसार रत्नाकर और सनेही की परंपरा का बीज है। यद्यपि उन्होंने अन्य शैलियों में भी लिखा है, परन्तु सबसे अधिक कवित्व इसी शैली में देखने को मिलता है। बुढ़ापे का वर्णन उर्दू शैली में देखिये–

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है,
जमाना जिन्दगी का जा रहा है।
किया क्या खाक ? आगे क्या करेगा?
अखीरी वक्त दौड़ा आ रहा है।

छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान शंकर समस्या–पूर्ति की कला को कुशल कलाकार थे। अलंकारों के क्षेत्र में सम्भवत: अतिशयोक्ति उनका प्रिय अलंकार था।

माखनलाल चतुर्वेदी – भारत सरकार द्वारा ''पदम विभूषण'' की उपाधि से सम्मानित और साहित्य जगत में ''एक भारतीय आत्मा'' के नाम से प्रसिद्ध श्री माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में एक छोटे से गांव वावाई में हुआ था। पिता काव्य अनुरागी थे। इसका प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा और दस वर्ष की छोटी सी आयु में ही कविता करने का प्रयास करने लगे। नियमित ढंग की शिक्षा अधिक नहीं हो पाई, परन्तु स्वाध्याय के बल पर विभिन्न भाषाओं, साहित्य और इतिहास का असाधारण ज्ञानार्जन किया।

पहले अध्यापक और फिर 'प्रभा' तथा 'प्रताप' पत्रिकाओं के सम्पादन विभाग में कार्य करके जीवन आरंभ किया और शीघ्र ही 'कर्मवीर' के सम्पादक बन गए। चतुर्वेदी प्रभावशाली वक्ता और निर्भीक स्वतंत्रता सेनानी थे। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहने के कारण अनेक बार लम्बी जेल यात्राएं करनी पड़ी। वास्तव में उनका सारा जीवन राष्ट्रदेवता के चरणों में ही समर्पित रहा। उनकी कामना भी यही थी।

मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि को शीश चढ़ाने,
जिस पथ से जावें वीर अनेक

चतुर्वेदी जी की साहित्य प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि, नाटककार, कहानीकार, निबंध लेखक और महान पत्रकार थे।

हिम किरीटिनी, हिन तरंगिनी, माता, युग, वेणु, समर्पण आदि उनके कविता संग्रह है।

'कृष्णार्जुन' युद्ध चतुर्वेदी जी का प्रसिद्ध नाटक तथा साहित्य देवता, अमीर इरादे, गरीब–इरादे निबंध संग्रह हैं। 'जवानी' कविता में चतुर्वेदी जी का क्रांतिकारी व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है, जहां उन्होंने देश की जवानी को संबोधन कर के कहा है–

मसलकर अपने इरादों सी उठा कर
वो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दें
रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँच कर तू शीश वे देकर जवानी।

छंद तथा भाषा प्रयोग आदि के क्षेत्र में भी चतुर्वेदी जी ने अपनी स्वतंत्र प्रकृति का ही. परिचय दिया है न उन्होंने छंद भंग की परवाह की और न ही व्याकरण के नियमों की चिंता। वास्तव में कविता के क्षेत्र में वे उद्दाम वेग के गायक थे और यह वेग किसी बंधन में नहीं बंध पाता।

इसी प्रकार रूपनारायण पांडेय, लोचनप्रसाद पांडेय, लाला भगवानदीन, वियोगी हरि, अनूप शर्मा, मुकुटधर पांडेय, सेठ गोविंददास, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामनारायण पांडेय, गिरिधर शर्मा, 'नवरत्न', 'रामदास गौड़ आदि द्विवेदीयुगीन कवियों की रचनाओं में देशप्रेम, समाज-सुधार, नारी जागरण, नीति एवं आदर्शवादिता जैसी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' इस युग में ब्रजभाषा के अंतिम अप्रतिम कवि हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 सरस्वती पत्रिका प्रकाशन कब हुआ ?

प्र. 2 द्विवेदी युग का नाम किसके नाम पर रखा गया ?

प्र. 3 द्विवेदी युग की समय सीमा क्या है ?

प्र. 4 द्विवेदी युग के दो प्रसिद्ध कवियों के नाम बताइए?

प्र. 5 प्रिय प्रवास का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

5.4 सारांश

आधुनिक हिन्दी साहित्य के दूसरे चरण को द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। इस युग को यह नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम को आधार मानकर दिया गया। इस काल की समय सीमा 1903 ई. से लेकर 1918 ई. तक मानी गयी है। यह आधुनिक हिन्दी साहित्य के उत्थान व विकास का काल है। सन् 1903 ई. में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक बने और 17 साल तक इन्होंने इस पत्रिका का संपादन किया। इस काल को 'जागरण सुधार काल' के नाम से भी जाना जाता है।

5.5 कठिन शब्दावली

संकलित - जोड़ा हुआ

रईस - धनी

अधिवेशन - जलसा

नीरद - मेघ अदंत

शिक्षाप्रद - ज्ञानप्रद

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1905 ई.
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी
3. सन 1900 से 1918 तक
4. (1) हरिऔध (2) मैथिलीशरण गुप्त
5. 1914 ई.

5.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास।
2. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास।
3. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

5.8 सात्रिक प्रश्न

प्र०1. द्विवेदी युग के विभिन्न साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान का विवेचन कीजिए?

प्र02. द्विवेदी युग काल निर्धारित करते हुए उनकी परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

प्र०3. द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तापूर्वक वर्णन करें।

*****

इकाई – 6
द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएं

संरचना

6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएं

- देशानुराग और राष्ट्रीय भावना
- समाज सुधार एवं जनजागरण
- भारतीय संस्कृति का गौरवगान
- उदार धार्मिक चेतना
- नैतिकता
- इतिवृत्तात्मकता
- मानवतावादी भावना
- नये विषयों का समावेश
- प्रकृति चित्रण
- स्वच्छंदतावाद
- हास्य व्यंग्य
- अतीत गौरवगान
- बौद्धिकता का प्रभाव

स्वयं आकलन प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न

6.1 भूमिका

इकाई पाँच में हमने द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं का अध्ययन किया। इकाई छ: में हम द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं का गहन अध्ययन करेंगे। इसके साथ-साथ हम समाज सुधार एवं जनजागरण की भावना का भी अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इकाई छ: का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?
2. देशानुराग और राष्ट्रीय भावना क्या है?
3. समाज-सुधार एवं जनजागरण की भावना किस प्रकार थी?

4. द्विवेदी युग में किस प्रकार अतीत गौरव गान हुआ है?

5. द्विवेदी युग में किस प्रकार बौद्धिकता का प्रभाव है?

6.3 द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएं

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद साहित्य जगत में भारतेन्दु के पदार्पण से जो क्रांति आई थी उसका प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग के साहित्य में उभर कर आया। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली का जो गद्य प्रस्फुटित हुआ था वह द्विवेदी युग में पल्लवित एवं पुष्पित होता दिखता है। वस्तुतः सन् 1900 से 1920 तक के कालखण्ड को द्विवेदी युग की संज्ञा दी गई है। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन वर्ष सन् 1900 से भारतेन्दु युग की परिसमाप्ति के साथ 'द्विवेदी युग' का आरम्भ माना जाना चाहिए। 'जागरण सुधार युग', 'आदर्शवादी युग, 'सुधारवादी युग' आदि इस कालखण्ड के अन्य नाम भी प्रस्तावित हुए है परन्तु 'भारतेन्दु युग' की तरह इस कालखण्ड को 'द्विवेदी युग' कहना ही सुसंगत है। जिस प्रकार भारतेन्दु-मण्डल के केन्द्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे, उसी प्रकार द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों के केन्द्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। इस युग प्रायः सभी साहित्यिक आन्दोलन उनसे प्रेरित एवं प्रभावित हुए हैं। ये अपने युग की साहित्यिक चेतना के सूत्रधार है। इस युग के साहित्य में जिस आदर्श की प्रतिष्ठा हुई, उसका समस्त श्रेय द्विवेदी जी को ही प्राप्त है।

द्विवेदी युग की कविता भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है उसमें राष्ट्रीय चेतना, समाजसुधार की भावना और धार्मिकता का समावेश हुआ। वह मानवतावाद विश्व प्रेम और जनसेवा को प्रश्रय देने लगी। उसमें नैतिकता, उपदेशात्मकता और प्रकृति चित्रण की प्रधानता मिलती है। इस युग में देशी एवं विदेशी भाषाओं की कविताओं का खड़ी बोली में अनुवाद हुआ। हिन्दी भाषा और उसके साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया गया।

इस युग के काव्य की भावगत एवं कलागत मुख्य प्रवृत्तियां हैं–

● **देशानुराग और राष्ट्रीय भावना भारतेन्दुयुगीन –** काव्य की भाति द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति भी देशानुराग और राष्ट्रीय भावना ही कही जा सकती हैं यहां भारतेन्दुयुगीन राष्ट्रीय भावना का विशद एवं व्यापक रूप मिलता है। भारतेन्दुयुगीन काव्य में देशभवित्त और राजभक्ति (अंग्रेज-भक्ति) दोनों प्रवृत्तियां मिलती हैं।

मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह आदि नैतिकतावादी तथा स्वच्छन्दतावादी दोनों प्रकार के कवियों में देश-प्रेम की भावना का स्वर मुरवर है। मैथिलीशरण गुप्त इस युग के राष्ट्रीय भावनाओं के प्रतिनिधि कवि है।

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर से समस्याएं सभी ।।

'साकेत' में कवि समुद्र पार बन्दिनी भारत लक्ष्मी को पराधीनता के बंधन से मुक्त करवाना चाहता है। श्रम और स्वावलंबन का संदेश देकर कवि गांधीवादी विचाराधारा भी प्रकट करता है। 'जयद्रथ वध' में न्यायोचित अधिकारों की प्राप्ति के लिए अनुप्रेरित करता है तथा द्वापर में मातृभूमि पर सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए उद्‌बोधित करता है और राष्ट्रीय एकता को स्वर प्रदान करता है। 'भारत गीत' कविता में श्रीधर पाठक को देश-प्रेम की व्यंजना स्वदेश पर अभिमान के लिए प्रेरणा देती है

वन्दनीय वह वेश, जहां के देशी निज अभिमानी हों।
बांधवता में बंधे, परस्पर परता के अज्ञानी हों।
निन्दनीय वह वेश, जहां के देशी निज अज्ञानी हों।
सब प्रकार परतन्त्रता पराई प्रभुता के अभिमानी हों।

रामनरेश त्रिपाठी 'पथिक', 'मिलन', तथा 'स्वप्न' जैसे खण्डकाव्यों में देशानुराग की भावना को सर्वोच्च मानते हैं तथा उसके लिए नवयुवकों को उत्सर्ग के लिए प्रेरित करते हैं। बालमुकुन्द गुप्त अंग्रेजों की शोषण के अन्यायपूर्ण नीति पर व्यंग्य करते हैं।

पराधीन रहकर अपना दुःख शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है।।

'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी 'जवानी' नामक कविता में देश की युवा शक्ति का आह्वान करते हुए कहा है–

तुम न खेलों ग्राम सिंहों में भवानी।
उठ चढ़ा दे स्वातंत्र्य प्रभु पर अमर पानी
री! मरण के मोल की चढ़ती जवानी

इसी प्रकार सुभद्राकुमारी चौहान की 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी' आदि काव्य रचनाएं स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का अमर संदेश लिए हैं।

● **समाज–सुधार एवं जनजागरण –** भारतेन्दु युग के कवियों की भांति इस युग के कवियों ने भी समाज–सुधार एवं जन–जागरण के स्वरों को अपने काव्य में वाणी दी है। इतना अवश्य है कि भारतेन्दुयुगीन कवि सामाजिक विकृतियों तथा रूढ़िगत परम्पराओं पर व्यंग्य करता है, तीखी आलोचना करता है, परन्तु द्विवेदीकालीन कवि समाज–सुधार से प्रेरित होकर सद्भावपूर्वक समाज की उन्नति चाहता है। मैथिलीशरण गुप्त, तथा सियारामशरण गुप्त समाज के अस्पृश्य समझे जाने वाले वर्ग के ही संवेदना प्रकट करते हैं, श्रीधर पाठक में विधवा समस्या पर प्रकाश डाला है, 'प्रियप्रवास' का कवि समाज–सेवा पर बल देता है। नाथूराम शर्मा 'शंकर' कुप्रथाओं की कटु आलोचना करते हैं। मैथिलीग गुप्त ने 'नारी शिक्षा' पर बल दिया है। पाठक जी ने 'बाल विधवा' कविता में विधवाओं की पीड़ा का कारुणिक चित्रण प्रस्तुत किया है। सियारामशरण गुप्त की कविताओं ने पीड़ित प्राणियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त है।

द्विवेदी युग की कविता में स्त्री–शिक्षा तथा विधवा का समर्थन आदि परम्परागत सामाजिक चेतना तो है ही साथ ही इसमें सामाजिक असंगतियों का घोर विरोधी भी है। इस युग के कवियों की सुधारवादी भावना में मण्डनात्मक प्रवृत्ति अधि क है। उनकी वाणी में प्राचीन 'समाज और नवीन संस्कृति के सामंजस्य का स्वर अधिक मुखर है। सामाजिक अनाचारों से पीड़ित के प्रति सहानुभूति और उसके उद्धार की कामना है। इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवि समाज सुधार की भावना से अनुप्रेरित होकर जनजागरण का संदेशवाहक बन जाता है।

● **भारतीय संस्कृति का गौरवगान –** द्विवेदीयुगीन कवि भारत के अतीत तथा उसकी संस्कृति का गौरवगान करता हुआ सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आकांक्षा व्यक्त करता है। इस युग के कवि की सस्कृति के विविध पक्षों को काव्य में उजागर करता है। मैथिलीशरण गुप्त को भारतीय संस्कृति का वैतालिक कहा जाता है। उनका काव्य भारतीय संस्कृति के विविध चित्रों का चित्राधार है। उन्होंने वैदिक संस्कृति से लेकर आधुनिक युग तक भारतीय संस्कृति के विविध रूपों का अंकन किया है। उनकी राष्ट्रीय चेतना भी सांस्कृतिक चेतना से अनुस्यूत है। गुप्तजी के 'साकेत' में रामायणकालीन संस्कृति तथा द्वापर, जयभारत, जयद्रथवध आदि में महाभारतकालीन संस्कृति तथा 'यशोधरा' में बौद्धकालीन संस्कृति के सुन्दर चित्र बिखरे हैं।

● **उदार धार्मिक चेतना –** द्विवेदी युग की कविता में व्यक्त धार्मिक चेतना उदारता और व्यापकता लिए है। इस युग की कविता राम और कृष्ण तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उसमें ईश्वर को ऐसी आध्यात्मिक शक्ति के रूप से प्रस्तुत किया है, जो मानव–प्रेम, दीन–दुखियों की सेवा एवं प्राकृतिक पदार्थों के सौंदर्य में व्यक्त होती है। जैसे ठाकुर गोपालसिंह की निम्नांकित पंक्तियां मानवता के उच्चादर्शों और विश्व–प्रेम की भावना को व्यक्त करती है।

जग की सेवा करना ही बस
है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बंधन ही में,
मुझको मिला मुक्तिं का द्वारा।

अपनी व्यापकता और उदार धार्मिक मनोदृष्टि के अनुकूल द्विवेदीकालीन कवियों ने राम और कृष्ण के परम्परागत चरित्र को भी नव दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। 'साकेत' के राम और 'प्रियप्रवास' के कृष्ण केवल अपने भक्तों के ही नहीं, सम्पूर्ण मानवता के हित में निरत दिखाई देते हैं। इस युग की कविता में धार्मिक भावना कहीं-कहीं रहस्यात्मकता की झलक भी लिए है जैसे-

तम में से नक्षत्र आज तक
घूम रहे हैं उसके कारण
उसका पता कहीं है।
किसको होगा यह रहस्य उद्‌घाटन।।

● **नैतिकता** – इस युग का काव्य नैतिकता के उच्चादर्शों को प्रस्तुत करता है। उसमें सौंदर्य और माधुर्य की अपेक्षा, लोकमंगल की भावना अधिक है। प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा इस युग के कवियों का अभीष्ट था। इसीलिए अनेक कवियों ने पौराणिक आख्यानों को काव्यबद्ध किया। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है-

केवल मनोरंजन न कवि कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का मर्म होना चाहिए।

वस्तुतः द्विवेदीयुगीन काव्य सुधार और आदर्श की भावना से प्रेरित है। इसमें कवि का ध्यान सच्चरित्रता, नैतिकता तथा सुधारों की ओर अधिक रहा है। 'जयद्रथ व' में मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं-

वाचक! प्रथम सर्वत्र ही जय जानकी जीवन कहो।
फिर पूर्वजों के शील की शिक्षा तरंगों में बहो।।

गुप्त और उपाध्याय ने इतिहास और पुराण के आख्यानों पर आधारित प्रबन्ध काव्यों की रचना ही उद्देश्य से की है। साकेत, जयद्रथ वध (गुप्त) प्रियप्रवास (हरिऔध) मिलन (रामनरेश त्रिपाठी) आदि सुधारवादी रचनाएँ हैं। द्विवेदीयुगीन इस काव्य प्रवृत्ति के आधार पर इसे सुधारवादी तथा आदर्शवादी युग की संज्ञा भी दी गई है।

● **इतिवृत्तात्मकता**– द्विवेदीयुगीन काव्य को इतिवृत्तात्मक काव्य की संज्ञा भी प्राप्त है। इन कवियों की रचनाएं इतिहास-पुराण के महापुरुषों के जीवन चरित से सम्बद्ध है और वे वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। किसी-न-किसी उपदेश-सन्देश को प्रस्तुत करना इनका उद्देश्य रहा है। सूक्ष्म भावों के कारण रचनाओं का यद्यपि यहाँ सर्वथा अभाव नहीं है फिर भी मुख्य रूप से स्थूलता एवं वर्णनात्मक प्रवृत्ति के कारण इस युग के काव्य में इतिवृतात्म का ही प्राधान्य है। स्वच्छन्दतावादी कविता इसका अपवाद है। आगे चलकर इस स्थूल और इतिवृत्तात्मक कविता की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी काव्य का आविर्भाव होता है।

वस्तुतः उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति के कारण इस युग की कविता इतिवृत्तात्मकता आ गई, क्योंकि यही शैली नैतिकता के प्रचार और आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के लिए अधिक उपयोगी होती है। यह इतिवृत्तात्मकता ही इस युग कविता में नीरसता का कारण बनी। इस युग के कवियों ने एक ओर तो परिश्रम के बुद्धिवाद को अपनाने का प्रयास किया तथा दूसरी ओर अपनी प्राचीन संस्कृति की भी बौद्धिक व्याख्या की है। इसीलिए राम और कृष्ण की कथाओं में नई उद्‌भावनायें की गई। 'प्रिय प्रवास' में राधा जैसी प्रेम दिवानी थी, परोपकार को प्रश्रय देती हुई कहती है-प्यारे जीवें, पर हित करें, गेह चाहे न आवें।

स्पष्ट है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण लेकर की गई काव्य रचनाओं में भावात्मक सरसता कोमलता अधिक नहीं हो सकती थी।

● **मानवतावादी भावना** – भारतेन्दुकालीन धर्म-दृष्टि यहां व्यापक रूप धारण कर मानवतावादी रूप धारण कर लेती है। 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त राम को ईश्वर के साथ 'मानव' रूप में ग्रहण करते हैं जो धरती को स्वर्ग सदृश बनाने का सन्देश देते हैं। इस युग का कवि मानव की सेवा को ही सच्ची सेवा मानता है। यह आर्य और दीन के संदर्भ में ईश्वर को विराजमान देखता है -

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।

तू खोजता मुझे था सब दीन के वतन में।

गोपालशरण सिंह जग की सेवा तथा विश्व प्रेम की 'सब मारों का सार' कहते हैं।

'प्रियप्रवास' में राधा कृष्ण के चरित्र को 'हरिऔध' में मानवतावादी दृष्टि से अंकित किया है। कृष्ण को कवि ने महामानव के रूप में प्रस्तुत किया है और राधा भी उन्हीं के पथ पर अनुसरण करती हुई पीड़ित, क्लान्त, श्रान्त मानव की पीड़ा हरण करने का संकल्प लेती है और लोक सेवा को भक्ति का चरमोत्कर्ष मानती है।

● **नये विषयों का समावेश –** द्विवेदीयुग की कविता में नये विषयों के समावेश से काव्य विषयों में विशदता और व्यापकता आई। प्राचीन परिपाटी की कविताएं तो लिखी ही जा रही थी, आधुनिकता के अनुरुप नये विषयों की ओर कवियों की अभिरुचि बढ़ने लगी। पुराने विषयों पर भी आधुनिक दृष्टि से विचार किया जाने लगा।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने विविध विषयों को अपने विषय बनाए। भाषा प्रेम, देश प्रेम, समाज, इतिहास, संस्कृति प्रकृति, धर्म, दर्शन, हास्य-व्यंग्य समसामयिक समस्याएं नारी शिक्षा, विधवा को सामाजिक स्थिति, दैनिक जीवन आदि प्राचीन और आधुनिक विषयों पर कवियों ने वर्णनात्मक एवं भावात्मक रचनाएं लिखी हैं। परम्परा और समसामयिकता का समन्वय इन कवियों में द्रष्टव्य है।

● **प्रकृति चित्रण –** प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी द्विवेदीयुगीन काव्य सम्पन्न है। यद्यपि प्रकृति-काव्य का समुन्नत रूप छायावादी काव्य में ही मिलता है, तथापि प्रकृति के विविध रूपों के रम्य दृश्यांकन द्विवेदीयुगीन कविता की सम्पदा है। इस युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी की प्रकृति चित्रण तो छायावादी प्रकृति-चित्रण के आकर्षक रूप द्रष्टव्य है। अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रियप्रवास' का प्रत्येक सर्ग प्रकृति वर्णन से ही आरम्भ होता है। इस युग के प्रकृति चित्र कहीं आलम्बनगत है तो कहीं उद्दीपनात्मक कहीं संवेदनात्मक तो कहीं इतिवृत्तात्मक प्रकृति के बाह्यरूप (सौन्दर्य) के चित्रण के साथ-साथ कहीं-कहीं उनकी अन्तरात्मा का भी स्पर्श किया गया है। 'प्रियप्रवास' का आरम्भ तो प्रकृति-चित्रण से होता है-

दिवस का अवसान समीप था।

गगन था कुछ लोहित हो चला।

तरु शिखा पर थी अब राजती।

कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रथा।

'पंचवटी' में चांदी रात की आलंकारिक छटा 'चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही थीं जलथल में' आदि पंक्तियों में चित्रित है। रामनरेश त्रिपाठी भी अपने खण्डकाव्यों में प्राकृतिक सुषमा के अनेक सुन्दर-चित्र संजोए हैं।

● **स्वच्छन्तावाद –** द्विवेदीयुगीन कवियों में जहां एक ओर इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक कवियों की रचनाएं मिलती हैं, वहां दूसरी ओर स्वच्छन्तदावादी काव्य का सृजन भी इस काल की एक अनुपम प्रवृत्ति है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाडेय, लोचनप्रसाद पाडेय तथा रूपनारायण पाण्डेय स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। प्रकृतिसौन्दर्यांकन प्रेम का स्वच्छन्द चित्रण, काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति, कथानकगत सूक्ष्मता आदि इन स्वच्छन्तावादी कवियों की प्रमुख विशेषताएं हैं। आचार्य शुक्ल श्रीधर पाठक को हिन्दी का पहला स्वच्छन्तावादी कवि मानते हैं।

● **हास्य-व्यंग्य –** भारतेन्दुयुगीन हास्य - व्यंग्यात्मकता की प्रवृत्ति यहां उस प्रकार की जिन्दादिली के साथ तो नहीं प्रकट हुई, क्योंकि आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व उसे संयत एवं मर्यादित कर रहा था, फिर भी राजनीतिक तथा धार्मिक विसंगतियों और विकृतियों पर व्यंग्यात्मता यहां विद्यमान है। बालमुकुन्द गुप्त इस युग के समर्थ व्यंग्यकार हैं। उनकी कविताओं तथा निबन्धों में लार्ड कर्जन हास्य-व्यंग्य को आलम्बन बने हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

औरों को झूठा बतलाना, अपने सब की डींग उड़ाना।

ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' भी इस युग के प्रमु व्यंग्यकार थे। आर्य समाज से प्रभावित होने के कारण एक और रूढ़िवादी धर्माडम्बरों पर प्रहार करते हैं तो दूसरी ओर पश्चिम सभ्यता का अन्धानुकरण करने वालों पर व्यंग्य बाण बरसाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य दृष्टिगोचर होता है। 'साकेत' का लक्ष्मण उर्मिला परिहास इस दृष्टि से उल्लेख हैं।

● **अतीत गौरव गान –** इस युग के अधिकांश कवियों ने भारत के अतीत-गौरव का स्मरण करागर, वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा दी है। वे श्रीराम एवं कृष्ण की कथाओं में नयी उद्‌भावनाएं करते हैं, जिससे वे देश के नव निर्माण में सहायक बनें। 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' जैसी रचनाओं में सेवा, त्याग, स्वालम्बन ,परोपकार आदि की जो उच्च भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं, ये इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं। ये कवि भारतीय संस्कृति के गायक कहे जा सकते हैं।

● **बौद्धिकतावाद का प्रभाव –** द्विवेदी युग के कवि जहां प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं, वहां पश्चिमी बौद्धिकतावाद के प्रभाव को भी ग्रहण करते हैं। इसी से ये प्राचीन संस्कृति बौद्धिक व्याख्या करते हैं। उनके अवतारी श्रीराम, आदर्श मानव की और श्रीकृष्ण आदर्श समाज सुधारक की भूमिका निभाते हैं। उनकी राधा भी परहित को अत्यधिक प्रश्रय देती है- ''प्यारे जीवें, पर हित करें, गेह चाहे न आवे''। इन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति की बुद्धिसम्मत व्याख्या करके उसे वर्तमान के लिए उपयोगी एवं मंगलकारी सिद्ध किया।

● **देशी विदेशी कविताओं का अनुवाद –** इस युग में देशी एवं विदेशी कविताओं का खड़ी बोली में अनुवाद हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की समृद्धि के आकांक्षी थे। इसी से उन्होंने अनुवाद कार्य की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। इस युग में बंगला-साहित्य की कई काव्य रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ। यथा- मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन विरचित 'मेघनाद वध' और 'विरहिणी ब्रजांगना' का अनुवाद किया।

● **खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में –** द्विवेदीयुगीन काव्य के अभिव्यंजना पक्ष की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है। काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा। भारतेन्दु-युग का कवि ब्रजभाषा में ही काव्य-रचना कर रहा था, उसके प्रति मोह को वह तोड़ नहीं पाया था। खड़ी बोली कविता लिखना शुरु अवश्य कर दिया था, परन्तु उसके खड़ी बोली के प्रयोग प्रारम्भिक ही कहे जाएंगे।

द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के मार्गदर्शन में कवियों ने खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया तथा उनकी महत्त्वपूर्ण और परिपक्व रचनाएँ खड़ी बोली में ही रखी गई। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी आदि की रचनाओं से खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

वस्तुतः द्विवेदी-युग में गद्य और पद्य दोनों की भाषा में एकता की स्थापना हुई। यह इस युग की तर्वाधिक महती घटना है और इसका श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा उनके सहयोगी कवियों को है। आचार्य द्विवेदी 'सरस्वती' के माध्यम से इस बृहत् कार्य को सम्पन्न कर सके। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यायसिंह उपाध्याय आदि कवियों ने इस भाषा को काव्योपयोगी सरस और रमणीय बनाने में योगदान किया।

● **छन्द और अलंकार –** छन्द और अलंकार के क्षेत्र में भी वर्ण्य-विषय की भांति वैविध्य देखा जा सकता है। 'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' में संस्कृत के वर्णिक छन्दों का सफलता से प्रयोग किया है। भुजंगप्रयात, वंशस्थ, मालिनी मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि 'प्रियप्रवास' के प्रमुख छन्द हैं। उन्होंने उर्दू शैली के चौपदों में भी काव्य-रचना की है। गुप्त जी ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्द प्रयुक्त किए हैं। 'हरिगीतिका' उनका सर्वाधिक प्रिय छन्द है। नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने कवित्त छन्द में वैशिष्ट्य दिखाया है। इनके अतिरिक्त रोला, सार, गीतिका, लावनी कुण्डलिया, छप्पय आदि छन्द कवियों ने सपफलतापूर्वक व्यवहृत किए हैं।

अलंकार-प्रयोग में भी ये कवि सिद्धहस्त हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि शब्दालंकारों तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि अर्थालंकारों का भी इन कवियों ने सहज रूप से प्रयोग किया है। अलंकारों का रसानुरूप प्रयोग भी इनकी विशेषता है।

● **काव्य-रूप और काव्य-शैली –** विवेच्य काल में प्राय: सभी काव्यरूपों में काव्य-प्रणयन हुआ है, परन्तु इसमें प्रबन्धात्मक रचनाओं का प्राधान्य रहा है। इस युग में महाकाव्य तथा खण्डकाव्य दोनों प्रवन्धात्मक काव्य-रूप मिलते हैं। 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है। गुप्त जी का 'साकेत', रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित-चिन्तामणि' इसी युग के महाकाव्य हैं। खण्डकाव्यों की दृष्टि से 'जयद्रथ वध', (मैथिलीशरण गुप्त) 'मौर्य विजय', (सियारामशरण गुप्त), 'पथिक' 'मिलन' (रामनरेश त्रिपाठी) आदि उल्लेखनीय हैं। रत्नाकर के ब्रजभाषा में रक्षित 'उद्धव-शतक' (प्रबन्धात्मक मुक्तक) का भी विशिष्ट स्थान है। इस युग के कई कवियों ने मुक्तक रचनाओं का भी प्रणयन किया है गीत-प्रगीत भी लिखे गए हैं, परन्तु प्रधानता की दृष्टि से यह युग प्रबन्धात्मक काव्य-रचना का युग ही कहा जा सकता है। इन काव्यों में इतिवृत्तात्मक तथा वर्णनात्मक काव्य-शैलियों का अधिक प्रयोग हुआ है।

समग्रत: द्विवेदीयुगीन काव्य भारतेन्दुयुगीन काव्य-प्रवृत्तियों के विकास का युग है। इस युग में देशानुराग, समाज-सुधार, अतीत की गरिमा का गान सांस्कृतिक चित्रण, सुधार, नैतिकता एवं आदर्शवादिता के साथ-साथ स्वच्छन्दतावाद काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां रही हैं तथा खड़ी बोली की काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी घटना है। पौराणिक कथा-वृत्तों एवं चरित्रों का पुनर्मूल्यांकन कर तथा अतीत को वर्तमान समाज के विविध आयामों के साथ जोड़कर इस काल के कवि ने अपनी आधुनिकता का परिचय दिया है। काव्य रूपों और शैलियों की दृष्टि से भी यह काव्य सम्पन्न एवं समृद्ध है। फिर भी आधुनिक काव्य के द्विवेदीयुगीन उत्थान में इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता का प्राधान्य रहा है।

विषयों की विविधता और भाषा की नवीनत की दृष्टि से द्विवेदी युग हिन्दी का महत्वपूर्ण युग रहा। इस युग का मूल्यांकन करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है, ''समग्रत: द्विवेदीयुगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरूत्थान, उदार, राष्ट्रीय, जागरण-सुधार एवं उच्चादर्शो का काव्य है। इसमें विषयगत अपार वैविध्य एवं व्यापकत्व मिलता है। इस युग में सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग हुआ है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास का श्रेय इसी कालखण्ड को है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 द्विवेदी युग के जनक कौन है?

प्र. 2 द्विवेदी युग का दूसरा नाम क्या है?

प्र. 3 द्विवेदी युग के एक महाकाव्य का नाम बताइए?

प्र. 4 'भारतेन्दु प्रज्ञेन्दु' उपनाम की उपाधि किस कवि को मिली ?

प्र. 5 बीसवीं शताब्दी के आरंभिक चरण का विश्वकोश किसे कहा गया है।

6.4 सारांश

द्विवेदी युग में महत्वपूर्ण गद्य रचनाकार हुए और उन्होंने महत्वपूर्ण गद्य रचनाएँ की। विशेष रूप से उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि गद्य विधाओं का विकास इसी युग में हुआ। इन विधाओं का अपना स्वतंत्र रूप बना। बाद में इन विधाओं के इन्हीं स्वतंत्र विधाओं की नींव पर महान साहित्यकारों का निर्माण हुआ। वे खड़ी बोली हिंदी की कविता के प्रारंभिक और महत्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिंदी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी।

6.5 कठिन शब्दावली

प्रतिष्ठा – मान मर्यादा

देशानुराग – देश भक्ति

अस्पृश्य - अछूत

आह्वान - पुकारना

वैतालिक - वैताल

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी
2. जागरण सुधारकाल
3. साकेत
4. नाथुराम शंकर
5. सरस्वत्ती पत्रिका को

6.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. शिवकुमार, हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन
2. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।
3. राम सजन पाण्डेय, हिंदी साहित्य का इतिहास।

6.8 सात्रिक प्रश्न

प्र०1. द्विवेदी युग का काल निर्धारित करते हुए उनकी परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

प्र०2. 'भारत-भारती' में राष्ट्रीय चेतना है स्पष्ट करें।

प्र०3. भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग चरमोत्कर्ष पर रहा प्रकाश डालें।

*****

इकाई – 7
हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना का अग्रिम विकास

संरचना

7.1 भूमिका

7.2 उद्देश्य

7.3 हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना का अग्रिम विकास

7.3.1 छायावाद – रूप – स्वरूप

7.3.2 छायावाद की परिभाषाएँ

स्वयं आकलन प्रश्न

7.4 सारांश

7.5 शब्दार्थ

7.6 स्वयं आकलन प्रश्न

7.7 संदर्भित पुस्तकें

7.8 सात्रिक प्रश्न

7.1 भूमिका

इकाई छः में हमने द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यक विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई सात में हम हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना के अग्रिम विकास, छायावाद का रूप स्वरूप तथा छायावाद की परिभाषाओं अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इकाई सात का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1 स्वच्छंदतावाद का अर्थ क्या है?

2 हिन्छी में स्वच्छंदतावादी चेतना का अग्रिम विकास कब हुआ?

3. छायावाद के रूप–स्वरूप क्या है?

4. छायावाद की परिभाषाएं क्या हैं ?

7.3 हिन्दी स्वच्छन्दतावादी चेतना का अग्रिम विकास

स्वच्छंदतावाद को यदि हम परिभाषित करें तो इसके भीतर नवीनता के उन्मेष के लिए आवश्यक उर्वरता, सृजनात्मकता के साथ–साथ प्राचीनता तथा जड़ता से मुक्ति आदि का अर्थ मिलेगा। हिंदी कविता इतिहास में विशेष देश काल की उपज है तथा इसका संबंध स्वाधीनता की चेतना पराधीनता विरुद्ध तथा रीतिवादी सौंदर्यबोध संवेदना और प्रवृत्ति के विरोध से भी है। इसका संबंध राष्ट्र, मनुष्य और प्रकृति को भी पराधीनता तथा उपभोगमूलक अर्थ से मुक्त करना है। स्वच्छंदतावाद के संदर्भ में पश्चिम के रोमेंटेसिज्म का जिक्र किया जाता है किंतु इग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और इटली आदि देशों में रेनेसा के उभार की परिवर्तनकारी नीतियों के तहत उपजे मध्ययुगीन क्लासिक प्रवृत्तियों से विद्रोह के साथ वहां रोमेटेसिज्म फलीभूत हुआ था। इन प्रवृत्तियों का मेल उन देशों की जिस स्वातंत्र्य चेतना से था उसमें हमारे देश भारत की तरह औपनिवेशिक गुलामी के अनुभव का योगदान नहीं था। भारत में स्वछंदतावाद का मूल स्वर ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी था। यह स्वातंत्र्य चेतना के भीतर देश राष्ट्र और जातीयता के प्रति प्रेम तथा सहज उत्सर्ग का प्रेरक भाव भी शामिल था। यह स्वर भारत देश की व्यापक सांस्कृतिक परंपरा से अपना सबंध जोड़कर विकसित हो रहा था। इसीलिए स्वच्छंदतावादी काव्य धारा के भीतर और

सर्वाधिक प्रत्यक्ष और शक्तिशाली स्वर राष्ट्रीयता का था। स्वच्छंदतावादी काव्यधारा ने प्रकृति में स्वातंत्र्य चेतना के नैसर्गिक अर्थ का अनुभव किया। यह प्रकृति एवं इसका विस्तार इनके लिए स्वदेश में स्वाभाविक वैविध्य और विस्तार की तरह था। इसलिए प्रकृति काव्य चेतना का काव्य इसके लिए प्रमुख बनता गया।

यूरोप में रोमेंटेसिज्म का समय तीव्र आर्थिक सांस्कृतिक और राजनैतिक बदलाव का रहा है। यही वक्त नये अविष्कारों नये उद्योग-व्यापार प्रक्रियाओं तथा नये उभरते एक सामाजिक संबंधों का समय है। वहीं स्वच्छंदतावाद यूरोपीय रोमेटेसिज्म की नकल नहीं था। इसके भीतर सामंतवाद के विरोध के साथ-साथ साम्राज्यवाद विरोध का स्वर भी था और सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह अपनी चेतना में बहुत सक्रिय स्पष्ट और साहसिक था। स्वच्छंदतावाद के समय में नवजागरण की चेतना का स्वर, परंपरा के प्रति प्रेम, राष्ट्रीयता, प्रकृति प्रेम एवं कल्पना का प्रसार गूंज रहा था। इस परंपरा को मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा इसे अभिव्यक्त किया।

स्वच्छंदतावादी काव्य का जड़ अतीत, रूढ़िवादिता, सामंतवाद, और रीतिवाद से स्पष्ट तथा तीव्र विरोध है। यह विद्रोह सवेदना, काव्यभाषा और शिल्प के स्तर पर साफ दिखाई देता है। संवेदना के स्तर पर नये विषयों, क्षेत्रों, प्रश्नों और विचारधाराओं से जुड़ाव है, तो भाषा के स्तर पर हिंदी भाषा का स्वरूप बहुलतामूलक, व्यापक तथा प्रवाही होता दिखाई देता है। मैथिलीशरण गुप्त 'भारत-भारती' के भविष्यत् खंड में लिखते हैं-

"हे कार्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता।"

7.3.1 छायावाद-रूप-स्वरूप

सामान्य रूप से, 1918 ई. के आसपास हिन्दी कविता जो अभिनव छवि बना रही थी, और जिसे डॉ. नगेन्द्र ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्राह कहा उसे आलोचकों ने 'छायावाद' की संज्ञा प्रदान की है। जिन समालोचकों ने यह नाम प्रदान किया उनकी दृष्टि से इस कविता धारा का आदरणीय स्थान नहीं था। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग उप और निन्दा अर्थ में किया था लेकिन स्वच्छंद कांव्यधारा के इन युवा कवियों ने इस विगर्हणार अभिधान को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया और छायावादी कवि के रूप में अपनी एक विहित पहचान बनाई। वस्तुत: छायावादी कवियों की पहचान अत्यन्त विशिष्ट है। वे अपनी भावविद्धता एवं शिल्पसिद्धता में अद्भुत हैं।

शाब्दिक निर्वचन की दृष्टि से यदि 'छायावाद' का विश्लेषण करें तो ज्ञात हो जाएगा कि इन छायावाद के तात्विक स्वरूप पर प्रकाश नहीं पड़ता है। 'छायावाद' छाया+वाद से बनता है। एक विशिष्ट और निश्चित धारा से संबंधित है और छाया शब्द अर्थ की भिन्न-भिन्न की छवियों से आच्छादित्त है। 'प्रसाद' जी 'छाया' शब्द को कुन्तक और आनन्दवर्धक ही स्थापनाओं से स्वरूप करने का प्रयास करते हैं। उनका कथन है कि वे मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, ही कान्ति की सरलता अंग में लावण्य कही जाती है-

मुक्ताफलेषु छायायास्तरत्वभिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहिच्यते।

प्रसाद ने कुन्तक की वक्रोक्ति से भी इस 'छाया' का संबंध जोड़ने का प्रयास किया है और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता, विच्छित्ति, छाया और कान्ति की सर्जना करती है। अब रामचन्द्र शुक्ल इसे अंग्रेजी। 'फैन्टेमेस्टा' से जुड़ा मानते हैं।

उक्त व्युत्पत्तियों की दृष्टि से 'छायावाद' के नामकरण की सार्थकता पर विचार करने से मालूम हो जाता है कि छायावादी प्रकृति एवं प्रवृत्ति से इन व्युत्पत्तियों का दूर से भी कोई नाता स्थापित नहीं हो पाता है। 'छायावाद' नामकरण से किसी निर्धारित रूप की प्रतीति नहीं होती है। जबकि, इसके विपरीत आदर्शवाद, यथार्थवाद आदि अभिधानों से उसमें स्वीकृत मूल्यों-प्रतिमानों को आसानी से जाँचा परखा जा सकता है। नाम रूप की पहचान होती है, लेकिन 'छायावाद' में इसके प्रतिकूल परिस्थिति है। यहाँ रूप से (प्रकृति-प्रवृत्ति से) नाम का अभिज्ञान होता है। इन्हीं कारणों से 'छायावाद' के उद्भव के समय इसके नामकरण को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा। कोई इसे 'हौवा' मान रहा था, कोई अस्पष्टता से युक्त,

और कोई 'छाया' से तात्पर्य टेढ़े नाम ग्रहण करने से मान रहा था। कोई इसे रहस्यवाद से जोड़ता था और कोई स्वच्छंदतावाद से। इस सब विशि नामों के उल्लेख का एक ही तात्पर्य था, वह था इन कवियों को हतोत्साहित करना तथा नीचा दिखाना। लेकिन इन सब भावनाओं के बावजूद छायावाद के सदाशयी कवियों ने इस नाम को सहर्ष अंगीकार किया और कहा कि छायावाद में ऐसा कोई भी रूप नहीं है जो अस्पष्ट हो, अवास्तविक हो तथा छायामात्र हो।

वस्तुत: 'छायावाद' का छायावाद नामकरण ही समीचीन है और इसके प्रवर्तक मुकुटधर पाण्डेय हैं। छायावाद अपने अन्तस् में तत्कालीन विशिष्ट काव्यधारा की भाव एवं शिल्प की समस्त विशेषताओं को आत्मसात् किए हुए हैं।

7.3.2 छायावाद की परिभाषाएँ

यद्यपि छायावादी कविता को छायावाद नाम अनायास प्राप्त हो गया है, लेकिन इसकी परिभाषाएँ सायास साध्य हैं। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कतिपय प्रमुख परिभाषाओं का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ इसका संबंध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन कर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।

छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति के व्यापक अर्थ में है।

डॉ. रामकुमार ने भी शुक्ल के समान छायावाद को रहस्यवाद से अभिन्न माना है। इनके शब्दों में ''परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।'' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, ''छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।'' इस प्रकार इन्होंने छायावाद को रहस्यवाद से कुछ मिलता-जुलता बताया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''छायावाद नाम उन आधुनिक कविताओं के लिए बिना विचारे ही वे दिया गया-

1. (i) जिनमें मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी।
   (ii) जो वक्तव्य विलय को कवि की व्यक्तिगत चिन्ता और अनुभूति के रंग में रंग कर अभिव्यक्त करती थी।
   (iii) जिनमें मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदलते हुए अलंकार, मूल्यों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी।
   (iv) जिनमें छन्द, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकला से बचने का प्रयत्न था और जिनमें शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई थी।
2. छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट हैं ताकि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता से ही नवीन भाषा शैली में अपने को अभिव्यक्त किया है।
3. सभी उल्लेख योग्य कवियों में थोड़ी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी की थी।

इस प्रकार द्विवेदी जी के अनुसार छायावाद एक सांस्कृतिक परम्परा का परिणाम है। काव्य की यह भारतीय परम्परा अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित अवश्य है, लेकिन अनुकृति नहीं। इसमें मानवीय जीवन के नवीन मूल्यों की नवीन शैली में अभिव्यक्तिफ हुई है। इसमें आध्यात्मिक अनुभूति, मानवतावादी विचारधारा तथा वैयक्तिक चिन्तन और अनुभूति का प्राधान्य है।

श्री गंगाप्रसाद पाडेय ने भावलोक की प्रगति के तीन चरण माने हैं प्रथम वस्तुवाद, द्वितीय छायावाद, तृतीय रहस्यवाद। पाडेय जी के अनुसार, ''यह (छायावाद) वस्तुवाद और रहस्यवाद के बीच की कड़ी है।'' श्रीरामकृष्ण शुक्ल ने छायावाद तथा रहस्यवाद को प्राय: एक ही मान लिया है। ''छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखता है, रहस्यवाद समस्त सृष्टि

में ईश्वर का। ईश्वर अव्यक्त है और मनुष्य व्यक्त है। इसलिए छाया मनुष्य की, व्यक्त की ही देखी जा सकती है, अव्यक्त की नहीं। अव्यक्त रहस्य ही रहता है।''

डॉ. नगेन्द्र ने एक ओर तो छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है और दूसरी ओर इसे जीवन के प्रति एक भावात्मक दृष्टिकोण कहा है। उनके शब्दो में, ''छायावाद एक विशेष प्रकार की भावपद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। जिस प्रकार भक्तिकाव्य जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण था और रीतिकाव्य एक दूसरे प्रकार का उसी प्रकार छायावाद भी एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।''

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह रहा है। परन्तु वह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वाधान में हुआ था। इसलिए उनके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।''

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, ''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार में छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।'' हमारे विचारानुसार आचार्य जी की इस सर्वमान्य व्याख्या में छायावाद के कतिपय छोरों को ही छुआ गया है, छायावाद के संपूर्ण स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया गया है। डॉ. देवराज का कहना है कि ''छायावाद गीति-काव्य है, प्रकृति काव्य है, प्रेम काव्य है।'' उक्त परिभाषा में बहुत कुछ कह देने की लालसा है।

हिन्दी के कुछ अन्य विद्वान आलोचकों ने छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अपने-अपने मन्तव्य छायावाद प्रकट किए हैं - ''छायावाद द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्त्मक कविता की प्रतिक्रिया है।'' ''प्रकृति में चेतना का आरोप छायावाद है।'' ''मानवीकरण छायावाद है।'' ''जिस प्रकार परमात्मा के प्रति प्रणय रहस्यवाद है, इसी प्रकार प्रकृति के प्रति प्रणय छायावाद है।'' पर इन सभी लक्षणों में सर्वागीणता न होकर एकागिता है।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के सबंध में लिते हैं- ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य, प्रकृति - प्रधान तथा उपचारवक्रता वे साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव, समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया कान्तिमय होती है।''

महादेवी वर्मा का कहना है कि ''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य की प्रकृति अपने दु:ख में उदात और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्रण बन गई। अत: अत: मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक की कारण, एक ही मूल्य है।''

समित्रानंदन पंत ने अपने काव्य 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। उन्होंने छायावाद को अंग्रेजी साहित्य के रोमांटिसिज्म से प्रभावित माना है। प्रसाद जहाँ छायावाद को भारतीय काव्य परम्परा में रखते हैं, वहीं पंत उसे अंग्रेजी साहित्य की रोमांटिसिज्म परम्परा में रखते हैं।

छायावाद के सम्बन्ध में दी गई उपयुक्त परिभाषाओं से अनेक बातें ज्ञात होती हैं-

1. छायावाद में आध्यात्मिकता होती है।
2. यह एक पद्धति विशेष है।
3. छायावाद प्रकृति में मानवीकरण है।
4. छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।
5. यह एक भावात्मक दृष्टिकोण है।
6. यह एक स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

7. यह एक गीतिकाव्य है. जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का अंकन होता है।
8. इसमें स्वानुभूति का ध्वन्यात्मक लाक्षणिक तथा उपचार वक्रतामयी प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्तिकरण होता है।
9. इसमें युगानुरूप वेदना की विवृत्ति होती है और यह वाद एक सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है।
10. इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है, जिसमें चिन्तन और अनुभूति का प्राधान्य है तथा इसमें मानवीय जीवन के नवमूल्यों का अंकन है।
11. यह एक थोपी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह है।
12. इसका मूलाधार सर्वात्मवाद है।

छायावाद सम्बन्धी उपर्युक्त विशिष्टताओं को यदि क्रमात्मक रूप से सूत्रबद्ध किया जाए तो कदाचित् सम्भव है कि हम इस काव्यधारा की विराट चेतना के स्वरूप को समझने में समर्थ हो सके। इस प्रकार छायावाद के स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत कुछ डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में कह सकते हैं कि, ''भारतीय काव्य परम्परा में हिन्दी कविता की छायावादी धारा अपने पूर्ववर्ती युग की प्रतिक्रिया में प्रस्फुटित एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण, एक विशेष दार्शनिक अनुभूति और एक विशेष शैली है, जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम के ब्याज से लौकिक अनुभूतियों का चित्रण है, जिसमें प्रकृति का मानवीकरण है, वेदना की विवृत्ति है, सौन्दर्य चित्रण है, गीति तत्त्वों की प्रमुखता है और जिसके व्यक्तिवाद के स्व में सर्व सन्निहित है।''

सीमांकन – छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता के तृत्तीय उत्थान के रूप में जाना जाता है। 1920 ई० के आसपास हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में आचार्य महावीरप्रसाद के प्रभाव से निरपेक्ष स्वतंत्र कवि प्रकाशित होना प्रारम्भ हो गई थी और इसे आचार्यो ने छायावाद नाम दिया था। सामान्यत: छायावाद का समय सन् 1918 ई० से 1935 ई० तक स्वीकार किया जाता है लेकिन छायावाद के उद्भव के संदर्भ में यह निवेदन कर देना समोचीन लगता है कि कोई काव्यधारा सहसा एक ही समय में एक ही वर्ष में प्रादुर्भूत नहीं हो जाती। बीजवपन अंकुरण त्तथा विकास की एक सतत समयाधृत प्रक्रिया है। इस प्रकार कुछ समय बाद वह अपनी अस्मिता को प्रकट करती है। छायावाद के विकास के संदर्भ में भी यह तथ्य लागू होता है। छायावादी कविता की बीजवपन निराला की 'जूही की कली' (प्रकाशित-वर्ष 1916) तथा पंत के पल्लव (प्रकाशन वर्ष 1920) से हो जाता है। 'कामायनी' (प्रकाशन वर्ष 1936) छायावाद के चरम उत्कर्ष के समय की कृति है।

छायावाद कविता की प्रेरणा– भूमि– किसी भी साहित्य का स्वरूप निर्धारण तत्कालीन परिवेश से प्रतिबद्ध होता है। युग की चेतना साहित्य को नियामक होती है। वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ आगत साहित्य को एक अभिनव दृष्टि और दिशा प्रदान करती हैं। वास्तविकता तो यह है कि 'छायावाद' अपने युग को उपज है। सीमांकन से यह सुस्पष्ट हो गया है कि छायावाद दो विश्वयुद्धों के मध्य का साहित्य है। यह समय प्रथम विश्वयुद्ध को समाप्ति (1918 ई०) तथा द्वितीय विश्वयुद्ध (1938 ई०) के प्रारम्भ का था। राजनीति में इस समय गांधीवाद का प्रभाव था और साहित्य में छायावाद का। दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में अपनी प्रभा और प्रभाव को प्रसारित कर रहे थे। इस समय को राजनीतिक स्थिति अत्यन्त भयावह थी। अंग्रेजी शासन का भय चारों ओर व्याप्त हो गया था। इस प्रकार 1918 ई० से 1936 ई० तक का समय भारतीय इतिहास के लिए स्वतंत्रता, भारतीयों और साम्राज्यवादी दमन नीति वाले अंग्रेजों के मध्य घनघोर संघर्ष का काल है। प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार को जन एवं धन से पर्याप्त सहायता की, लेकिन इस सहयोग के प्रतिदान में भी जब भारतीयों को कुछ नहीं मिला तो वे असहयोग आन्दोलन, साइमन कमीशन का विरोध, डांडी सत्याग्रह नाना प्रकार के आन्दोलनों और हडताल को करने के लिए विवश हुए। 1936 ई० में लखनऊ अधिवेशन के पश्चात् 'करो या मरो' की संकल्पना दृढ़ हो गई। वस्तुत: ये सारे आन्दोलन उस समय की मुक्तिकामी जनचेतना की प्रबलता के प्रमाण हैं। आन्दोलनों की ऐसी प्रबलता ने ब्रिटिश साम्राज्य को भारत को स्वतंत्र करने के लिए विवश कर दिया।

छायावादकालीन सामाजिक परिवेश भी अत्यन्त असंगत था। पूरा भारत दो वर्गों में विभक्त था। एक वर्ग शोषक वर्ग था जो भोग–विलास में पूर्ण रूप से लीन था, दूसरा वर्ग था शोषितों का, जो अत्यन्त दयनीय जिन्दगी जी रहा था पहले वर्ग में अंग्रेज ऑफिसर, सामंत तथा अंग्रेजों के पिछलग्गू थे। दूसरे वर्ग में भारत की बहु–बहुलांश संख्या थी। समाज के अनेक रूढ़ियां तथा विशषमताएं व्याप्त थीं। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, सती–प्रथा, छुआछूत, वर्ग–व्यवस्था, ब्राह्याडम्बर आदि तत्कालीन समाज के अभिशाप थे। अंग्रेजी शिक्षा का तूफान की चारों और फैल रहा था। ईसाई मिशनरियां ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार में संलिप्त थीं। अपने मत–धर्म की व्यापक प्रतिष्ठा के लिए वे भारतीय धर्म और संस्कृति की व्यर्थता को प्रतिपादित करती थीं। इन विडम्बनाओं से घिरे व्यक्ति से भला प्रगति की कामना कैसे की जा सकती थी। ऐसी विसंगतिपूर्ण स्थिति ने यहाँ के विचारकों के समक्ष एक प्रश्न पैदा कर दिया। उनके सामने कुछ न कुछ करने का भाव जाग्रत हो गया। इसीलिए इस भयावह आक्रान्तता को समाप्त करने के लिए भारतीय पुनर्जागरण का व्यापक आन्दोलन प्रारम्भ होता है। इस आन्दोलन का नेतृत्व राजा राममोहन राय करते हैं। बाद में स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद तिलक, गाँधी आदि धर्म नेताओं और राजनेताओं ने इस राजनीतिक और सांस्कृतिक चुनौती को स्वीकार किया और अंध विश्वासों, रूढ़ियों, पलायन और निराशा के विरुद्ध प्रबल स्वर उठाया। साथ ही साथ भारत की पुरातन शत्तिफ, सामर्थ्य, एतत्विषयक गरिमा तथा सचेतन मूल्यों की तरफ भी जनसामान्य का ध्यान आकर्षित किया। आन्दोलनों के परिणामस्वरूप: उस समय के सामाजिक जीवन में जागरूकता आई और जीवन जीने के लि कतिपय नए क्षितिजों का उद्घाटन हुआ।

छायावाद का साहित्यिक पृष्ठाधार द्विवेदीयुगीन साहित्य है। द्विवेदीयुगीन काव्यधारा इतिवृत्तात्मकता, गद्यात्मकता, स्थूलता, उपदेशात्मकता से सम्पृत्तफ होने के कारण शुष्क और नीरस है। स्वयं आचार्य महावीरप्रसा द्विवेदी ने कविता को उपदेश का उपादन स्वीकार किया। द्विवेदी युग में श्रृंगार तथा अभिव्यंजना का सप्रयास बहिष्कार है। इन सब बातों की प्रतिक्रिया के कारण अवसर पाकर छायावादी कविता नई संवेदना एवं शिल्प को लेकर गतिशील हुई। इसमें द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मकता की उपेक्षा हुई तथा सूक्ष्मता, काल्पनिकता, चित्रात्मकता तथा व्यंजकता की व्यापक प्रतिष्ठा हुई है।

इस प्रकार छायावाद के समय राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगत होता है। संवेदना का धरातल तो बदला ही, साथ ही साथ प्रस्तुति–भंगिमा में भी भेद आया। छायावाद ने द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मक के विरुद्ध अभिव्यंजना की प्रतिष्ठा की और राजनीतिक परतन्त्रता के विरोध में सम्पूर्ण मानवता की स्वाधीनता का अलख जगाया। वस्तुत: सम्पूर्ण छायावादी चेतना को समझने के लिए उस समय मिश्रित परिस्थिति को समझना परम आवश्यक है। बिना परिवेश को समझे छायावाद की वास्तविकता की सजगता का आस्वादन असंभव है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 हिंदी में स्वच्छंदतावाद का कवि किसे कहा जाता है?

प्र. 2 श्रीधर पाठक का जन्म कब हुआ?

प्र. 3 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम क्या है?

प्र. 4 छायावाद की समय सीमा क्या है?

प्र. 5 छायावाद को प्रतिबिम्बवाद किसने कहा?

7.4 सारांश

मशीनीकरण से मानव की मुक्ति की प्रेरणा के लिये उन्होंने प्रगति की ओर देखा वह प्रकृति इनके काव्य में स्वतंत्रता की मूल प्रेरणा बनकर शामिल हुई थी। स्वछंदता वादियों ने कविता की व्याख्या तीव्र भावनाओं सहज उच्छलन के रूप में की। आचार्य शुक्ल ने इस शब्द का अनुवाद स्वच्छंदतावाद के रूप में किया। छायावाद रहस्यवाद भी स्वछंदतावाद का ही अगला चरण है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने स्वतंत्रता की मांग की किंतु बाद में जब महसूस किया कि सामाजिक दबाव बेहद कठोर व अनमनीय है तो स्वछंदतावाद ही रहस्यवाद में परिणत हो गया।

7.5 कठिन शब्दावली

उद्घाटन - खोलना

अनुसरण - पीछे चलना

अनुपम - अनूठा

परिपक्व - प्रौढ़

प्रख्यात - अतिप्रसिद्ध

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के लिए

1. श्रीधर पाठक
2. 11 जनवरी, 1858
3. प्रिय प्रवास
4. सन् 1918 से 1936 ई.
5. रामविलास शर्मा

7.7 संदर्भित पुस्तकें

1. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास
3. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

7.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1 श्रीधर पाठक प्रकृति प्रेमी थे, इस बात की पुष्टि करें।

प्र.2 आधुनिक युग की स्वच्छंदतावादी धारा की परिस्थितियों पर प्रकाश डालें।

प्र.3 छायावादी युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?

*****

इकाई – 8
छायावाद युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ

संरचना

8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 छायावाद युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएँ

- जयशंकर प्रसाद
- सुमित्रानंदन पन्त
- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
- महादेवी वर्मा

स्वयं आकलन प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्दावली

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भित पुस्तकें

8.8 सात्रिक प्रश्न

8.1 भूमिका

इकाई पाठ सात में हमने हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना के अग्रिम विकास का अध्ययन किया। इकाई आठ में हम छायावाद युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके साथ–साथ हम छायावाद के प्रमुख चार स्तंभों का भी गंभीरता से अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इकाई आठ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. छायावाद का अर्थ एवं परिभाषाएँ क्या है?
2. छायावाद के प्रमुख साहित्यकार कौन–कौन है?
3. छायावाद की प्रमुख रचनाएँ कौन–कौन सी है?
4. छावावाद के प्रमुख चार स्तंभ कौन से है।

8.3 छायावादी युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएं

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में द्विवेदी युग की इतिवृतात्मकता की प्रतिक्रियास्वरूप उभरी काव्यधारा 'छायावादी काव्यधारा' कहलायी। वैयक्तिकता प्रधान यह काव्यधारा नई शैली, छंद, मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ उभरी जिसमें प्रेम–सौन्दर्य–प्रकृति को आधार बनाया गया। स्वच्छंद प्रवृति के कारण यह काव्यधारा 'स्वच्छंदतावादी काव्यधारा' भी कहलाई। इस काव्यधारा के प्रमुख स्तंभों में जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला को जाना जाता है। इस सभी कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

जयशंकर प्रसाद (1889 – 1937 ई.) – महाकवि प्रसाद हिन्दी के उज्ज्वलतम प्रकाश पुंज हैं। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं, 'भारतीय संस्कृति' के कलाकार हैं, उदात्त मानवीय अनुभूतियों के गायक हैं। बहुमुखी प्रतिभा, समन्वय–भावना तथा विश्व हितैषिता हिन्दी साहित्य ने तुलसी के बाद प्रसाद में ही प्राप्त की है।

महाकवि प्रसाद का जन्म 1889 ई. में काशी के 'सुंघनी साहु' परिवार में श्री देवीप्रसाद साहुजी के घर हुआ। प्रसाद के शैशव में ही साहित्यिक अभिरुचि के संस्कार जागृत हुए, जिनका विकास उत्तरोत्तर उनके जीवन में देखा जा सकता है। प्रसादजी का स्वभाव शांत, गम्भीर एवं संकोची था। उनका जीवन अत्यंत संयंत था प्रलोभनों से वे परे थे, पर सांसारिक कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से पराङ्मुख न थे। जीवन के प्रारंभ से ही व संघर्षो की चट्टानों से टकराने वाले फेनहास बरसाती जलधारा के सदृश थे। 15 नवम्बर, 1937 को काशी में प्रसाद ने इहलोक-लीला समाप्त की।

प्रसाद ने ब्रजभाषा में ही लिखना आरम्भ किया और उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ 'चित्राधार' और 'प्रेमपथिक' ब्रजभाषा में ही मिलती हैं। परन्तु ब्रजभाषा में प्रसाद का मन चिरकाल तक नहीं रमा, वे खड़ीबोली में कविता लिखने में प्रवृत्त हुए। 'कानन कुसुम' प्रसाद की खड़ीबोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। 'करुणालय' पौराणिक पात्रों से सम्बद्ध गीतिनाट्य है। और 'महाराणा का महत्त्व' इतिवृत्ति प्रधान काव्य है। 'प्रेमपथिक' में प्रसाद की आदर्श प्रेम-सम्बन्धी धारणा व्यक्त है। 'झरना' छायावादी काव्य शैली के प्रवर्तन का द्योतक है। आंसू प्रसाद की 'घनीभूत पीड़ा' की अभिव्यक्ति है और 'लहर' में प्रसाद के कवि हृदय की आशा का संचार है। 'कामायनी' प्रसाद की सर्वोत्कृष्ट रचना है। विश्व साहित्य के स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसका अन्यतम स्थान है। कामायनी में सभी समस्याओं के मूल को व्यक्त किया गया है।

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित कामायनी आधुनिक युग का महाकाव्य है। जिसमें कर्ममय जीवन को अपनाते हुए अहम्युक्त मन की समस्या को उठाया है कि अहम् छूटता नहीं है-

इस पंचभूत की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व।

इसी अहम् के कारण इच्छा, ज्ञान, क्रिया का विच्छेद दिखाया है जिसका परिणाम है संघर्ष। कामायनी में इसी संघर्ष को मिटाने के लिए समरसता का संदेश दिया है -

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनंद अखण्ड घना था।

वस्तुतः कामायनी : सत्य, शिव और सुंदर का समन्वय है।

प्रसाद केवल उच्चकोटि के कवि ही न थे, उच्चकोटि के नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार भी थे। हिन्दी की ऐतिहासिक नाटक परम्परा के वे अग्रणी हैं। 'चन्द्रगुप्त' 'अजातशत्रु' 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' उनके श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक हैं। 'कंकाल' तथा 'तितली' प्रसाद की दो औपन्यासिक कृतियां हैं। 'छाया' 'प्रतिध्वनि', 'इन्द्रजाल', 'आकाशदीप' और 'आँधी' उनके कहानी संग्रह उन्होंने निबन्धों की भी रचना की थी। इस प्रकार सर्वोमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं।

सुमित्रानंदन पन्त (1990-1977 ई.)- आधुनिक हिन्दी कविता में सर्वाधिक एवं सर्वोत्तम सर्जनात्मक प्रतिभा के धनी है सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त ने प्रकृति की चित्रशाला में जिन चित्रों को उकेरा है, वे एक से एक सुन्दर एवं अप्रतिम हैं। 'वीणा' से लेकर 'समाधिता' तक पास की, गत्यात्मकता के विविध रूप देखे और परखे जा सकते हैं। पन्त का जन्म 20 मई सन् 1900 को अल्मोडा जिले के कौसानी नामक गांव में हुआ। पन्त के काव्य में प्रकृति के प्रति जो अनुराग चेतना है, उसका श्रेय उनकी इस रमणीय जन्मभूमि को ही दिया जा सकता है, जिसके आंचल में कवि को मां का सा वात्सल्य प्राप्त हुआ। सन् 1921 में गांधी जी के आह्वान को सुनकर कवि ने कॉलेज की शिक्षा छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। पन्त ने अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया था। इनका देहावसान सन् 1977 में हुआ।

भावसौन्दर्य, कला संस्कार तथा अभिव्यंजना कौशल सभी दृष्टियों से पन्त की यह अन्यतम रचना है। उनका प्रगतिवादी काव्य-व्यक्तित्व 'युगान्त' से आरंभ हो जाता है जिसका 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में विकास होता है। 'युगवाणी' में मार्क्सवाद, गांधीवाद तथा समाजवाद पर लिखी कविताओं में युग की मनोवृत्ति ध्वनित होती है। डॉ. नगेन्द्र ने इसे भारतीय साम्यवाद की वाणी कहा है। वस्तुत: पंत के काव्य का यह तीसरा सोपान 'सूक्ष्मचेतना' 'आध्यात्मवाद' तथा मानवतावाद' के रूप में प्रकट हुआ है।

पंत की परवर्ती रचनाओं में उनका महाकाव्य 'लोकायतन' तथा कई स्वतंत्र कविता संग्रह -'कला और बूढ़ा चांद', 'किरणवीणा', 'पुरुषोत्तम राम' 'सत्यकाम', 'पौ फटने से पहले', 'गीत हंस', 'समाधिता' आदि को लिया जा सकता है। 'लोकायतन' पंत का महाकाव्य है। 'लोकायतन' लोकजीवन का महाकाव्य है। इसमें प्राचीन जीवन-मर्यादाओं के सजीव चित्रण के साथ वर्तमानयुगीन संघर्ष है। यह काव्य पंत को अन्यतम उपलब्धि हैं। उनके प्रौढ़ जीवन की अनुभूतियों का सार इस रचना में प्राप्त है। 'कला और बूढ़ा चाँद' में पंत की पूर्ववर्ती दर्शनाक्रांत युग समाप्त होता है। चिदम्बरा पर पंत को ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला।'

पंत छायावाद के प्रमुख उन्नायकों में से हैं। प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में वे प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य में आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण आदि प्रकृति-चित्रण के सभी रूप सहज देखे जा सकते हैं। वे तो प्रकृति के आगे स्त्री सौंदर्य को भी कुछ नहीं समझते हैं। अत: उन्मुक्त कंठ से कहते हैं।

छोड़ दुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा हूँ लोचन

पंतजी की मध्यवर्ती रचना में प्रगतिवादी मानी गई है। साम्राज्यवाद का विरोध वर्ग संघर्ष का चित्रण, यथार्थ, ईश्वर एवं धर्म के मध्यवर्ती काव्य में देखी जा सकती है। 'कैदी और कोकिला' कविता में वे गली-सड़ी व्यवस्थाओं के त्याग का आह्वान करते हैं-

गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण शीर्ण पुरातन

वे शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहते हैं-

खड़ा द्वारा पर लाठी टेके
यह जीवन का बूढ़ा पंजर
चिपटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढांचे पर

जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अपनी वाणी को कभी कमजोर नहीं बनने दिया है, में यथार्थ के अभिव्यक्तिकरण के लिए सीधी-सादी सरल भाषा का समर्थन करते हुए कहते हैं-

तुम वहन कर सको, जनमन में मेरे विचार।
वाणी मेरे चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।

अत: सुमित्रानंदन पंत हिंदी के प्रौढ़ कलाकार, कोमल, भावुक एवं उत्सुक चिंतक कवि हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (1897-2061 ई.) छायावाद के उन्नायकों में श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का अन्यतम स्थान है। निराला का काव्य एक उदात्त भूमि का काव्य है। उसमें दार्शनिक एवं भावात्मक चिन्तन का सुसामंजस्य है, जिससे कवि के गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। उनका काव्य काव्याशास्त्रीय सीमाओं के बन्धन से सर्वथा मुक्त हैं। और हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारिता का प्रतीक हैं।

महाकवि निराला का जन्म जनवरी, सन् 1897 में बंगाल प्रान्त के महिषादल में हुआ। कवि का वैयक्तिक जीवन एक करुण गाथा से कम नहीं। स्वयं कवि के शब्दों में मुझे नहीं मालूम कि पिछले जन्म में मैंने ऐसे क्या पाप किए थे कि मेरे जन्म लेते ही मेरी माँ स्वर्ग सिधार गई और पिता के प्रेम से भी वंचित रहा। बचपन ही में मेरी शादी हो गई और मेरी पत्नी भी मुझे अकेला छोड़कर चली गई। अपने पीछे अपनी निशानी एक पुत्र और पुत्री छोड़ गई, लेकिन यौवन प्राप्त करते-करते मेरी पुत्री भी मुझसे रूठ गई। निराला आजीवन आर्थिक दृष्टि से विपन्न रहे। इस प्रकार महाप्राण निराला ने परिस्थितियों का विषपान करते हुए साहित्य के क्षेत्र में अमृत की स्त्रोतस्विनी प्रवाहित की है। निराला का व्यक्तित्व और साहित्य दोनों ही यथार्थ में निरालापन लिए हुए थे।

महाप्राण निराला के साहित्यिक जीवन का आरम्भ उनकी प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' (सन् 1916) से होता है और सन् 1945 तक उनकी साधना कृती रूप में चलती रही। बाद के वर्षों में शारीरिक एवं मानसिक आस्वस्थ्य के कारण उनका कवि-जीवन विकसित नहीं हो सका, यद्यपि यदा-कदा वे लिखते ही रहते थे। निरालाजी की प्रमु काव्य-कृतियां हैं- अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, नये पत्ते, बेला, आराधना, अर्चना, गीतगूंज' तथा सांध्य काकली।

काव्य रचनाओं के अतिरिक्त निराला जी की कहानियां, उपन्यास एवं निबन्ध भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं। अप्सरा, निरुपमा, अलका, प्रभावती, चोटी की पकड़ काले कारनामे, चमेली आदि इनके उपन्यास हैं। लिली, सखी, चतुरी-चमार, सुकुल की बीबी इनके कहानी संग्रह हैं। कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा आदि रोचित्र हैं। निबन्ध के क्षेत्र में 'प्रबन्ध-पद्म', 'प्रबन्ध प्रतिभा', 'प्रबंध परिचय', 'रवीन्द्र कविता कामन' आदि कृतियाँ हैं। भीम, ध्रुव, प्रहलाद शकुन्तला आदि इनके जीवन-चरित हैं। समन्वय तथा मतवाला पत्रों का सम्पादन भी निराला ने किया है! इस प्रकार गद्य तथा पद्य में निराला की महत्वपूर्ण देन है। कवि निराला छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही उनके काव्य में अद्वैतभावना से प्रेरित रहस्यवाद, सामाजिक साम्य का अनुगामी प्रगतिवाद एवं प्रयोगशीलता की ओर उन्मुख प्रयोगवाद भी सहज एवं स्वाभाविक स्थान प्राप्त कर गए हैं। कला के क्षेत्र में मुक्त छन्द उनकी महत्त्वपूर्ण देन है। निराला के हृदय में करुणा का अथाह स्त्रोत भी व्याप्त था जो 'विधवा' और 'भिक्षुक' के रूप में प्रकट हुआ है। विधवा का एक कारुणिक चित्र देखिए -

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीना,
वह क्रूर काल के ताडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरू की छुटी लता-सी बीण-
'दलित' भारत की विधवा है।

'भिक्षुक' की मर्म व्यथा का जो चित्रण कवि ने किया है वह अत्यंत मार्मिक है जो पशुवत जीवन जीने को तैयार हैं क्योंकि पेट की ज्वाला शाश्वत सत्य है जिसे मिटाना मजबूरी है-

चाट रहे जठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए

इस विषय व्यवस्था को मिटाने के लिए ही वे ओजमयी स्वर से 'बादल राग' का आह्वान करते हैं-

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अंबर में भर निज रोर

यहाँ चावल मोक्ष का प्रतीक है। 'जागो फिर एक बार' कविता में पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध नवयुवकों को जगाकर एकत्र करने की बात करते हैं। राम की शक्ति पूजा कविता में निराला की स्वयं की पीड़ा व्यक्त है जिसमें यह बताया गया कि शक्ति भी अन्य अर्थ की ओर खिंची चली जाती है- 'अन्याय जिधर शक्ति उधर है' लेकिन आस्था, विश्वास और संघर्ष से शक्ति का जवाब महाशक्ति से देना होगा। अत: निराला मौलिक शक्ति की कल्पना करते हैं- 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना' निराला का काव्य छायावादी सौन्दर्य और प्रगतिवादी ओज और संघर्ष का अद्भुत समन्वय है।

भाषिक दृष्टि से निराला का भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे संस्कृत के विद्वान थे। अत: समास शब्दों के प्रयोग पर भी उनकी भाषा जटिल नहीं हो पाई है।

उन्होंने परवर्ती रचनाओं में व्यावहारिक भाषा को अपनाया है जिसमें प्रचलित उर्दू-फारसी के अतिरिक्त अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। कुल मिलाकर उनकी भाषा भी उनके व्यक्तित्व की तरह स्वच्छन्दता लिए है।

महादेवी वर्मा (1907–1987 ई.) – महादेवी वर्मा आद्यन्त छायावादी कवयित्री हैं। महादेवी का काव्य प्रकृति के बीच जीवन का गीत है और उस पर रहस्यभावना का रंग अन्य छायावादी कवियों से अधिक गहरा है। इसी से व आधुनिक युग की मीरा कही जाती हैं।

महादेवी का जन्म 26 मार्च, 1907 ई. में फर्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इनके पिता श्री गोविंदप्रसाद तथा माता श्रीमती हेमरानी थीं। पाच वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का प्रारम्भ मिशन स्कूल इन्दौर में हुआ। घर पर पढ़ाई के लिए एक पण्डित, एक मौलवी, एक चित्रशिक्षक तथा संगीत शिक्षक का प्रबन्ध था। नौ वर्ष की आयु में इनका विवाह हो गया। कुछ समय के लिए अध्ययन रुका, फिर इन्होंने पढ़ना, आरम्भ किया तथा एम.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की। 1932 ई. महादेवी प्रयोग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनीं। 1959 ई. में विद्यापीठ की उपकुलपति बनीं। भारत सरकार की और से इन्हें पद्मभूषण की उपाधि भी प्राप्त हुई। वस्तुत: महादेवी का जीवन तथा साहित्य विभिन्न रंगी सूत्रों का अद्‌भुत सम्मिलन है।

महादेवी की काव्य–कृतियाँ हैं– 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'सन्धिनी', 'सप्तवर्णा', 'बंगदर्शन', 'हिमालय', 'आधुनिक कवि' आदि। 'नीहार' महादेवी की प्रथम काव्य रचना है, जिसमें प्रकृति के प्रति कवयित्री की कौतूहलपूर्ण एवं जिज्ञासामयी दृष्टि से अधिक है।

महादेवी के काव्य में छायावाद की प्राय: सभी विशिष्टताएँ मिलती हैं। भावमयता, प्रकृति-चित्रण, वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता, कल्पना की उड़ानय करुणा-भावना, मानवीकरण, 'लाक्षणिक प्रयोग', प्रतीकात्मकता आदि सभी छायावादी प्रवृत्तियों महादेवी के काव्य में विद्यमान है।

महादेवी में करुणा-वेदना की अनुभूति अत्यन्त तीव्र हैं वह अपनी दिव्य करुणा-वेदना को चिरस्थायी बना लेना चाहती हैं। इसीलिए वे कहती हैं-

चिन्ता क्या है निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अंधेरा ।।

महादेवी ने प्रकृति के विविध रूपों का अंकन किया है। कही वे प्रकृति में विराट की छाया देती हैं और कहीं उससे तादात्म्य स्थापित करती हैं 'मैं नीर भरी दु:ख की बदली', 'प्रिय सांध्य गगन मेरा 'जीवन'। मानवीकरण के रूप में उनका बंसत रजनी का चित्र अत्यन्त आकर्षक है। वस्तुत: महादेव के प्रकृति-चित्र सर्वत्र उनकी भावना से रजित है।

महादेवी ने प्रकृति पर चेतना का आरोप करने के साथ उससे भाव साम्य भी स्थापित किया है। दार्शनिक चिंतन के कारण वह अधिक मार्मिक हो गया है-

चुभते ही तेरा अरुण बाण।
बीते कण–कण से फूट–फूट
मधु के निर्झर से सजल गान।

महादेवी वर्मा छायावादी कवयित्री होने के साथ-साथ, सशक्त गद्य-लेखिका भी हैं। उनकी गद्य रचनाएँ हैं - 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृंखला की कड़ियं', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'विवेचनात्मक गद्य', 'क्षणदा', 'मेरा परिवार' और 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध। इनमें से 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं।', 'पथ के साथी' तथा 'मेरा परिवार' संस्मरणात्मक रचनाएं है, जिनमें रेखाचित्र निबन्ध तथा कहानी की विशेषताओं का सहज समावेश है। महादेवी की भाषा प्रांजल प्रौढ़ और कोमल है। स्निग्धता और मसृण उसका स्वभाव है। प्रत्येक शब्द किसी बिम्ब विशेष को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। शब्द चयन के लिए उन्होंने संस्कृत का सहारा लिया है। मुख्यत: तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हुए

भी कहीं-कहीं, गति, प्रवाह और भाव सौंदर्य की वृद्धि के लिए 'साकी', 'प्याला', 'खुमार' आदि उर्दू शब्दों को अपना लिया है। संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का गुण इनकी भावनाओं को सजीव बनाता है।

वस्तुत: छायावादी काव्य को महादेवी ने प्राणवान् बनाया है। उसकी भावात्मकता को समृद्धि प्रदान की है। डॉ. देवराज के अनुसार - ''छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने मुक्तक छंद दिया, पंत ने शब्दों की खराद पर चढ़ाकर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले।''

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त डॉ. रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, माथुर, दिनकर, जानकीवल्लभ शास्त्री, रामनरेश 'शुक्ल 'अंचल', केदारनाथ मिश्र प्रभात गोपालसिंह नेपाली शम्भूनाथ सिंह, नरेन्द्र शर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, सोहन लाल द्विवेदी आदि की रचनाओं में भी छायावादी काव्य की कुछ विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। इनमें से कई कवि छायावादोत्तर हालावाद, नवस्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के कवि हैं। समग्रत: यह कहा जा सकता है इनमें से अधिकांश कवियों ने छायावाद युग में लिखना, शुरु किया था, परन्तु उनके काव्य का विकास परवर्ती युग में ही हुआ।

स्वंय आकलन प्रश्न

प्र. 1 छायावाद की प्रकृति क्या है?

प्र. 2 स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कथन किसने कहा?

प्र. 3 'झरना' का प्रकाशन कब हुआ?

प्र. 4 छायावाद के जन्मानुसार प्रथम कवि कौन है?

प्र. 5 छायावाद शब्द का प्रयोग सबसे पहले किसने किया?

8.4 सारांश

छायावाद में हिंदी ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली कविता पूर्णत: प्रतिष्ठित हो गई। इसे साहित्यिक खड़ी बोली का स्वर्ण युग कहा जाता है। अपने जीवन के निजी प्रसंगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को अनेक छावादी कवियों ने काव्य-वस्तु बनाया। प्रारंभ में साहित्य के पीठाधीशों ने जिस छायावाद को देखकर उसकी साहित्य के पीठाधीशों ने जिस छायावाद को देखकर उसकी खिल्ली उड़ाई, वही छायावाद अपनी रचनात्मक उपलब्धियों के कारण आधुनिक हिंदी कविता का स्वर्णयुग गौरव सिद्ध होता है।

8.5 कठिन शब्दावली

प्रवृत्ति - स्वभाव

चरमोत्कर्ष - पारमिता

सघनता - सघन होने की अवस्था

नवोन्मेष - नया उत्थान

खिल्ली - उपहास

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. रहस्यावादी
2. नागेन्द्र
3. 1918 ई.
4. जयशंकर प्रसाद
5. नंददुलारे वाजपेयी

8.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
3. राम कुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

8.8 सात्रिक प्रश्न

प्र०1. छायावाद की प्रवृत्तियों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ?

प्र०2 छायावाद की परिभाषा सहित विभिन्न साहित्यकारों के योगदान का विवेचना कीजिए।

प्र०3 भाषा की दृष्टि से छायावाद युग की उपलब्धियों पर प्रकाश डालें ?

*****

इकाई – 9
छायावादी काव्यधारा और उसके रूप

संरचना

9.1 भूमिका
9.2 उद्देश्य
9.3 छायावादी काव्यधारा
9.3.1 छायावादी काव्यधारा के रूप
9.3.2 छायावादी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएँ
● वैयक्तिक्ता की प्रधानता
● प्रेम सौन्दर्य की प्रधानता
● श्रृंगारिकता
● प्रकृति चित्रण
● वेदना करूणा की प्रधानता
● मानवतावाद
● जीवनदर्शन
● नवीन छंद एवं अलंकार
स्वयं आकलन प्रश्न
9.4 सारांश
9.5 कठिन शब्दावली
9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
9.7 संदर्भित पुस्तकें
9.8 सात्रिक प्रश्न

9.1 भूमिका

इकाई आठ में हमने छायावाद युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाओं का अध्ययन किया। इकाई नौ में हम छायावादी काव्यधारा, छायावादी काव्यधारा के रूप एवं छायावादी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इकाई नौ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. छायावादी काव्यधारा क्या है?
2. छायावादी काव्यधारा के रूप क्या है?
3. छायावाद का उद्‌भव एवं विकास कब से हुआ?
4. छायावाद की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएँ क्या है?

9.3 छायावादी काव्यधारा

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। अत: परिस्थितियों की करवट के साथ–साथ साहित्य की प्रवृत्तियों में भी बदलाव आना सहज ही है। हिंदी साहित्य के आधुनिककालीन द्विवेदी युग के बाद एक विशिष्ट काव्यधारा का जन्म हुआ जिसे छायावादी काव्य की संज्ञा दी गई। वस्तुत: द्विवेदीयुगीन, इतिवृत्तात्मकता, जड़ता की प्रतिक्रिया स्वरूप दो महायुद्धों के बीच की कविता छायावादी कविता कहलायी।

9.3.1 छायावादी काव्यधारा के रूप

आकार के सबंध में किसी को कोई भ्रम नहीं था किंतु इस कविता के 'छायावाद' शब्द को लेकर सही अर्थ सामने नहीं आ पाया। सभी विद्वानों ने 'छायावाद' शब्द को लेकर विभिन्न अटकलें लगाई। सभी की परिभाषाएं अलग हैं, इन परिभाषाओं के आधार पर इस कविता की एक रूपरेखा स्वयं तैयार हो जाती है।

महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और जयशंकर प्रसाद इस कविता के प्रमुख चार स्तंभ माने जाते हैं।

'छायावाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1920 में मुकुटधर पाडेय ने किया था।

गंगाप्रसाद पाण्डेय छायावाद को 'वस्तुवाद एव रहस्यवाद के बीच की कड़ी' कहते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी छायावाद के सम्बन्ध में लिखते हैं। ''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म, किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का मान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार छायावाद 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' है। साथ ही वे इसे एक विशेष प्रकार की भावपद्धति भी मानते हैं। आचार्य द्विवेदी इसे 'विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम' स्वीकारते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा इसे 'थोथी नैतिकता एवं रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह कहते हैं।' डॉ. देवराज के अनुसार ''छायावाद गीतिकाव्य है, प्रकृति-काव्य है, प्रेम-काव्य है।'' वे इसे पौराणिक-धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह भी कहते हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा का कहना है कि ''परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।'' शांतिप्रिय द्विवेदी के विचार से ''छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।''

श्री रामकृष्ण शुक्ल के अनुसार ''प्रकृति में व्यक्ति का, मानव जीवन का प्रतिबिंब देखने की पद्धति छायावाद है।'' छायावादी कवियों ने भी छायावाद के स्वरूप के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद छायावाद को भारतीय परम्परा में मानते हैं। उनके अनुसार ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान के स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएं हैं।'' महादेवी वर्मा ने छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद को माना है और प्रकृति को उसका साधन स्वीकार किया है। ''छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।'' वे कहती हैं कि ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। मनुष्य की इसी अभिव्यक्ति के लिए गिने-चुने शब्दों का शब्द विधान छायावाद कहलाया।

9.3.2 छायावादी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएं

जयशंकर प्रसाद छायावाद को ''स्वानुभूति की अभिव्यक्ति की भंगिमा कहते हैं।'' पन्त छायावाद को पाश्चात्य साहित्य के रोमाटिसिज्म से प्रभावित मानते हैं। यहां संक्षेप में छायावादी कविता की विशेषताओं को देखा जा सकता है-

● वैयक्तिक्ता की प्रधानता –

छायावादी कविता में स्व की अभिव्यक्ति है। छायावादी कविता वस्तुनिष्ठ कवि न होकर आत्मनिष्ठ कवि हैं। उसने वस्तु की बाह्य रूप-रेखा, गुण आदि को महत्व न देकर वस्तु द्वारा जगाई गई अनुभूतियों एव कल्पनाओं को महत्त्व दिया है। कवि ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों-अपने हर्ष-शोक, सुख-दुख को अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। छायावाद में कवि का 'स्व', 'अहं' अथवा 'आत्म' स्फूर्त हैं और उसने 'उत्तम पुरुष' में अपनी अनुभूतियों की अभिव्ययंजना की है। यह वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना की पद्धति हिन्दी गीतिकाव्य के लिए बड़ी उपादेय प्रमाणित हुई हैं। निराला ने लिखा है-

मैंने में शैली अपनाई, देखा एक दुःखी निज भाई।
दुःख की छाया पड़ी हृदय में, झट उमड़ वेदना आई ।।

छायावाद का 'स्व' असामाजिक भी नहीं है। उसके 'स्व' में 'सर्व' निष्ठित है और वह मंगलमय है। इसी से छायावादी काव्य में व्यंजित हास-रुदन रूढ़ियों के बंधन से मुक्त होने के लिए विकल भारतीय व्यक्ति का हास-रुदन है।

प्रसाद के 'आंसू', पंत की 'ग्रंथि' और 'पल्लव की रचनाएँ', महादेवी की 'यामा' और निराला की कविताओं में जो वेदना का संदर्भ हैं, वह वैयक्तिक ही है। परंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि छायावादी कवि समष्टि से निरपेक्ष होकर व्यष्टि में ही लीन रहता है। वस्तुत: इन कवियों की 'स्व की अभिव्यंजना में 'पर' की अभिव्यंजना छिपी है। स्पष्ट है कि इनकी कविता का 'मैं' आत्मकेन्द्रित नहीं है। उसकी वेदना सबकी वेदना है।

• प्रेम–सौन्दर्य की प्रधानता

छायावादी काव्य प्रेम तथा सौंदर्य का काव्य है। श्रृंगार-भावना की इसमें प्रधानता है। परन्तु यह श्रृंगार तथा सौन्दर्य चेतना रीतिबद्ध काव्य की श्रृंगारिकता एवं सौन्दर्य-चेतना से भिन्न है। सौंदर्याकन में कवियों ने बाह्यसौन्दर्य की अपेक्षा अन्त-सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया है। प्रसाद ने 'कामायनी' में सौंदर्य को 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' कहा है। छायावादी कवियों का श्रृंगार-वर्णन, सौन्दर्य तथा प्रेम-वर्णन सभी सूक्ष्म एवं उदास है। उसमें वासना की गंध नहीं हैं।

इस धारा के कवियों ने नारी सौन्दर्य एवं प्रेम का चित्रण करते हुए स्थूल क्रिया व्यापारों की अपेक्षा सूक्ष्म भाव-दिशाओं को अधिक महत्त्व दिया है। कविवर प्रसाद 'आँसू' में नारी सौन्दर्य एवं प्रेम का वर्णन करते हुए कह उठते हैं-

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आये।

• श्रृंगारिकता –

छायावादी काव्य की श्रृंगार- भावना में संयोग (मिलन) की अपेक्षा विरह-वेदना अधिक हैं विरहानुभूतियों की व्यंजना में छायावादी कवियों को पर्याप्त सफलता मिली है। पंत की 'ग्रंथि' तथा 'उच्छ्वास' और 'आँसू' आदि कविताएं विप्रलम्भ की सुन्दर रचनाए हैं। प्रसाद के 'झरना', 'आँसू' तथा 'लहर' में वेदना की सुन्दर व्यंजना है। 'वेदना, उपालम्भ, अभाव, अतीत के मधुमय क्षणों की स्मृति आदि के अनेक चित्र छायावादी काव्य की विरहानुभूति के सुन्दर उदाहरण है। कुछ पंक्तियां देखिए –

पागल रे वह मिलता है कब,
उसको तो देते ही हैं सब,
तू क्यों फिर उठता हैं पुकार,
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार छायावादी कविता प्रधानत: श्रृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म व्यक्तिगत कुण्ठाओं से हुआ है और व्यक्तिगत कुण्ठाएं प्राय: काम के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं। जबकि छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद थे और प्रेम के विषय में उनका कहना हैं-

यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूलशक्ति थी प्रेम कला।

इसी प्रकार सौन्दर्य के विषय में उनकी धारणा थी – उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।

प्रसाद का प्रेम भाव शरीर की भूख नहीं है, उसमें काम भावना है सही, परन्तु उसमें भोग की प्रवृत्ति नहीं है। बल्कि

काम मंगल पंडित से श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।

अत: छायावादी कवियों का सौंदर्य प्रेम अपर्थिव है। प्रसाद ने नारी के अतीन्द्रिय सौंदर्य के प्रति आदर भाव व्यक्त करते हुए लिखा है-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

इनकी श्रृंगार भावना सूक्ष्म तथा मानसिक है। इन्होंने नारी के आत्मिक सौन्दर्य एवं प्रकृति पर नारी भावना के आरोप के रूप में श्रृंगार भावना को प्रमुखता दी है। इनकी श्रृंगार भावना में अश्लीलता एवं स्थूलता का प्राय: अभाव मिलता है। वस्तुत: छायावादी कवियों का प्रेम-श्रृंगार-पुष्ट-प्रांजल है जो उनको अनता: साधना का प्रतीक है।

● प्रकृति चित्रण –

छायावादी काव्य में प्रकृति-चित्रण को विशेष स्थान मिला है। पन्त, प्रसाद, निराला महादेवी आदि छायावादी कवियों में प्रकृति को मानव की भाति स्वतन्त्र अस्तित्व से सम्पन्न माना है। पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।

पन्त प्रकृति के मंजुल रूप का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि हैं जबकि प्रसाद ने प्रकृति में विराट् चेतना का अधिक अनुभव किया है। 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक प्रसाद का समग्र काव्य प्रकृति की चेतना से अनुप्राणित है। महादेवी के रहस्यात्मक गीतों में प्रकृति प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है।

वस्तुत: छायावादी काव्य प्रकृति के अनन्त रूपों, सौंदर्य एवं भावात्मक दृश्यों का काव्य है। पन्त ने छाया को इस रूप में संबोधित किया है-

कहो कौन हो दमयन्ती सी
तुम तरु के नीचे सोई।
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या,
अलि, नल सा निष्ठुर कोई।

वस्तुत: प्रकृति ही छायावाद की प्रेरणा भूमि है। इन्होंने मानव हृदय और प्रकृति के संबंध को सौन्दर्य की रेशमी डोर से बांधा है। आलम्बन एक ुली किताब बनकर सामने आई है। फलत: उल्लास, पीड़ा, उन्माद और रागात्मक संवेदना की लिखावट काफी साफ है। उसमें हरी घास पर बिछी ओंस की बूंदों का, उषा की सुंदर किरणों का घनी अमराइयों से छन छन आती धूप के अनेक सरस किंतु यथार्थ चित्रण मिलते हैं। निराला की कविता 'संध्या सुंदरी' में मानवीकरण देखिए –

दिवअवसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुंदरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे

● वेदना करूणा की प्रधानता –

छायावाद में वेदना तथा करुणा की अभिव्यक्ति भी एक प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन कवियों ने दु:ख और वेदना को जीवन के लिए उन्नायक माना है। महादेवी छायावाद की सर्वश्रेष्ठ वेदना-गायिका है। पन्त ने 'उच्छ्वास' और 'आंसू' में पीड़ा-प्रियता प्रकट की है। प्रसाद के 'आंसू' में पीड़ा 'मानवता शिर की रोली' है और 'निराला' ने जीवन-संघर्ष की पीड़ा को व्यक्त किया है।

वस्तुत: दु:खवाद छायावाद का प्रमुख तत्त्व है, जो मानवतावाद पर आधारित है। इस पीड़ा की महादेवी के काव्य में आध्यात्मिक धरातल पर अभिव्यक्ति हुई है। भगवान् बुद्ध की 'करुणा' का भी उन पर प्रभाव है। वे अपने प्रियतम को पीड़ा में ढूंढती है-तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूगी पीड़ा।

छायावादी कविता के मूल में एक ओर व्यक्तिगत जीवन और दूसरी और तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता का प्रभाव कह सकते हैं। इन कवियों ने वेदना एवं करुणा को कविता का मूलभाव भी माना है। कविवर पंत कहते हैं-

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा पहला गान।

उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी, कविता अनजान।

निराला की पक्तियां देखिए जिसमें उनकी व्यक्तिगत पीड़ा का भाव है - स्नेह निर्झर बह गया, रेत ज्यों तन रह गया।

छायावादी कविता में व्यक्त नैराश्य और विषाद के धुंधलके की ओर संकेत करते हैं। वस्तुत: छायावादी कवि जगत की क्षणभंगुरता, सौन्दर्य की नश्वरता और मानवीय आशा आकांक्षाओं की विफलता के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। इसलिए उनकी कविता करुण-कणों से गीली है।

● मानवतावाद –

छायावाद में मानवतावाद की प्रतिष्ठा का भाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। सभी छायावादी कवियों ने मानवीय महत्ता के गीत गाये हैं। 'कामायनी' में 'विजयिनी मानवता' का रूप चित्रित है। पन्त ने मानव को 'सुन्दरतम' माना है। इस प्रकार छायावादी काव्य मानवीय महत्ता का परिचायक है। छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण का स्वर भी मिलता है। भारतेन्दु युग से चली आती हुई राष्ट्र-प्रेम की धारा छायावादी काव्य में उच्छल रूप में विद्यमान है। 'प्रसाद', 'निराला' आदि के काव्य में राष्ट्रीय भावनाओं का सुन्दर निरूपण हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

अरुणं यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

इस धारा के कवियों ने मानवमात्र के प्रति सहानुभूति एवं प्रेम प्रकट किया है। छायावादी कवि मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर ही युग युग से उपेक्षित नारी की मुक्ति चाहता है।

मुक्त करो नारी को

युग युग की कारा से बंदिनी नारी को।

● जीवनदर्शन –

छायावादी-काव्य में कवियों की जीवन-दृष्टि एवं विचारधारा की व्यापक एवं सूक्ष्म अभिव्यक्त हुई है। जीवन एवं समाज के विषय में इन कवियों का दृष्टिकोण बौद्धिक की अपेक्षा भावात्मक अधिक है। ये कवि किसी-न-किसी दर्शन से सम्बद्ध है। प्रसाद शैवदर्शन के अनुयायी हैं और निराला अद्वैतवादी। महादेवी पर भी अद्वैतवाद तथा बौद्धदर्शन का प्रभाव है।

● काल्पनिकता –

कल्पना काव्य के भाव पक्ष का प्रमु तत्त्व है। कल्पना की विशेषता के कारण ही छायावादी काव्य में चित्रात्कता का गुण पाया जाता है। मन और कल्पना पर पड़े स्थूल प्रभाव का सूक्ष्म विश्लेषण और उसे सूक्ष्म अनुभूतियो का रूप-रंग देकर साकार करना छायावादी कवि का ध्येय रहा हैं वह बाह्य जगत में प्रतिबिंबित, और तरंगित सुषमा और सौंदर्य को ग्रहण कर उसे नवीन और मौलिक रूप देना चाहता है। इस कविता के कवियों की कल्पना में नवीनता और मौलिकता के अतिरिक्त सूक्ष्मता विशेष है। उदाहरण के लिए रजनी-बाला के छिद्र युक्त नीलवसंत से उसके गौरवर्ण की झलक संबंधी कल्पना की सूक्ष्मता को दे जा सकता है-

फटा हुआ था नील बसन क्या?

ओ! यौवन की मतवाली,

देख अकिंचन जगत लूटता,

तेरी छवि भोली भाली।

● रहस्य – भावना की अभिव्यक्ति –

इस धारा के कवियों ने जीवन, जगत् आदि को रहस्यमयी दृष्टि से देखा है। प्रकृति में वह अज्ञात सत्ता के दर्शन किए हैं। कविवर सुमित्रानंदन पंत प्रकृति में उस अलौकिक शक्ति का आभास पाकर कह उठते हैं –

न जाने नक्षत्रों में कौन।

निमंत्रण देता मुझको मौन ।।

● राष्ट्रीय चेतना –

छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय चेतना को भी अपने काव्य में वाणी दी है। देश–प्रेम के गीत गाए हैं। महाकवि जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों के काव्य में स्वतन्त्रता प्रेम की अभिव्यक्ति यत्र–तत्र देखी जा सकती है। देश–प्रेम की भावना से अभिभूत होकर प्रसाद कह उठते हैं–

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

● स्वच्छंदतावाद –

वैयक्तिक दृष्टिकोण ने छायावादी कविता की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को जन्म दिया। प्रेम और सौन्दर्य भावना की रुदि–मुक्त अभिव्यक्ति भाषा और शब्दावली का स्वच्छन्द प्रयोग इसके अंतर्गत आते हैं। इसी प्रवृत्ति की प्रभावान्विति के परिणामस्वरूप छंद, अलंकार और भाषा के क्षेत्र में नए अर्थ वाले काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों में नए परिवर्तन आए।

● आदर्शवादी दृष्टिकोण –

छायावादी कवियों ने बाह्य जीवन के यथार्थ की अपेक्षा कल्पनात्मक आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर काव्य–रचना की है। इनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी अधिक रही और इन्होंने कल्पना–लोक में विचरण करते हुए आदर्शवादी भावनाओं को बड़े कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है।

● युगीन प्रभाव –

छायावादी काव्य अन्तर्मुखी होने पर भी युगीन प्रभाव से अछूता नहीं है। महाकवि प्रसाद विरचित 'कामायनी' में युगीन घात–प्रतिघातों का सुन्दर चित्रण हुआ है। कवि अपने युग की अशांति का सबसे बड़ा कारण बौद्धिकता की प्रधानता को मानता है। इसी से वह हृदय और बुद्धि का समन्वय चाहता है। अशांति में शांति की खोज उस समय की एक बहुत बड़ी आवश्यकता थी।

● नवभाषा प्रयोग –

सामान्यत: काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली को द्विवेदी युग में ही अपना लिया गया था किंतु उसमें माधुर्य लालिमा कोमलता चित्रात्मकता और लाक्षणिकता की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। इस कार्य को छायावादी कवियों ने पूरा किया। संस्कृत शब्दावली के अतिरिक्त उर्दू और लोकभाषा शब्दों का प्रयोग भी इन कवियों ने किया। छायावाद ने भाषा का परिष्कार किया, नई शब्द रचना की, मुहावरों के प्रयोग से उसे सम्प्रेषणीय बनाया, उसे कोमल कान्त कलेवर प्रदान करके भावात्मकता और माधुर्य प्राण, संचार किया।

● प्रतीक एवं बिम्ब विधान –

काव्य जगत में प्रतीक भाव–सम्प्रेषण और भाषा अलंकरण का कार्य करते हैं। प्रतीक प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कविता बहुत समृद्ध है। कविता में एक और नया अर्थ देने के लिए परम्परागत प्रतीक का प्रयोग हुआ। इनमें प्रसाद द्वारा अपनाये गए श्रृंग और 'डमरू' तथा महादेवी वर्मा द्वारा अपनाने गए सूर्य, कमल, उषा, संध्या, शंख, मुरली और सम्पुट आदि संस्कृति प्रतीक प्रमुख हैं–

श्रृंग और डमरू निनाव जस

सकल विश्व में बिखर उठा सा

छायावाद के नवीन प्रतीक अधिकांश में प्रकृति गृहीत हैं।

● मूर्तामूर्त विधान –

मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त उपमानों का विधान करके छायावादी कवियों में अपनी सूक्ष्म कल्पनाशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है। सभी छायावादी कवियों का दृष्टिकोण उपमान-प्रयोग के सबंध में एक सा है।

● नवीन छंद एवं अलंकार –

छायावादी कवियों ने एक ओर परम्परागत छदों एवं अलंकारों का प्रयोग किया और दूसरी ओर नवीन छंदों एवं अलंकारों के प्रयोग से अपने काव्य को अधिकाधिक सुंदर एवं प्रभावशाली बनाया। छंदों में मुक्त छंद और अलंकारों में मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय जैसे अलंकारों को अपनाया।

निष्कर्षत: छायावादी काव्य अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उसने मानव को महत्ता दी है। व्यक्तिवाद एवं गीति तत्त्व की प्रतिष्ठा इस धारा की अनुपम देन है। बीस वर्षो की छोटी-सी अवधि में उसने हमें 'कामायनी', 'आंसू', 'परिमल', 'गुंजन', 'यामा' जैसी उत्कृष्ट काव्य-कृतियाँ प्रदान की हैं। डॉ. देवराज छायावादी काव्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं ''वस्तुत: आधुनिक हिन्दी काव्य को सुन्दर शब्दकोश और कोमल मधुर अनुभूतियां छायावाद की ऐतिहासिक देन हैं।'' किन्तु जनजीवन से दूर होने अर्थात् पलायनवादी होने तथा कल्पना की अतिशयता के कारण आई अधिक क्लिष्टता और शैलीदोष के कारण बहुत कम समयावधि में ही इस काव्यधारा का अवसान हो गया।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 डॉ. नगेन्द्र के अनुसार छायावाद की समय सीमा क्या है?

प्र. 2 छायावाद की प्रयोगशाला किस रचना को कहा जाता है?

प्र. 3 छायावाद का मैनिमेस्टो किसे कहा जाता है?

प्र. 4 छायावाद का प्रथम प्रयोक्ता किसे कहा जाता है?

9.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों का प्रेम भी विशिष्ट है। इनके प्रेम की पहली विशेषता है कि इन्होंने स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा सूक्ष्म सौंदर्य का ही अंकन किया है। जिसमें स्थूलता, अश्लीलता और नग्नता नहीं है। जहां तक प्रेरणा का सवाल है छायावादी कवि रूढ़ि-मर्यादा अथवा नियमबद्धता को स्वीकार नहीं करते है।

9.5 कठिन शब्दावली

धुरी - अक्ष, चूल, कील

दृष्टि - अक्ष, चक्षु, आँख

दयनीय -दीन, निर्धन, दु:खी

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1918 - 1938
2. झरना
3. पल्लव
4. श्रीधर पाठक

9.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास

2. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन

9.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 छायावादी कवि प्रेम एवं करूणा के कवि थे, स्पष्ट कीजिए।

प्र. 2 सुमित्रानंदन पंत के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3 छायावाद की प्रवृति पर आलेख लिखिए।

*****

इकाई – 10
उत्तरछायावादी काव्य

संरचना

10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 उत्तरछायावादी काव्य

- निराला
- सुमित्रानंदन पत
- महादेवी वर्मा
- जानकी वल्लभ शास्त्री

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न

10.3 भूमिका

इकाई नौ में हमने छायावादी काव्यधारा, छायावादी काव्यधारा के रूप एवं छायावादी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई दस में हम उत्तरछायावादी काव्यधारा एव उसके प्रमुख रचनाकारों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इकाई दस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. उत्तरछायावाद का अर्थ क्या है?
2. उत्तरछायावाद का उद्भव एव विकास कैसे हुआ?
3. उत्तरछायावादी काव्यधारा क्या है?
4. उत्तरछायावादी काव्यधारा में जानकी वल्लभ शास्त्री का योगदान क्या है?

10.3 उत्तरछायावादी काव्य

उत्तरछायावादी काव्य में उत्तरछायावाद कभी–कभी भ्रम की स्थिति उत्पन्न करता है और वह भ्रम यह है कि यह वह काव्य है जो छायावाद की समय सीमा के बाद लिखा गया है। इससे प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता व उत्तरोत्तर लिखा गया समस्त काव्य को उत्तरछायावादी काव्य समझ लिया जाता है। वस्तुत: इस समस्त काव्य को हम छायावादोत्तर काव्य के नाम से बेहतर जानते हैं। उत्तरछायायादी काव्य वह काव्य है जो छायावाद की समय सीमा के बाद तो लिखा गया है, परन्तु इस काव्य में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता आदि विभिन्न छायावादोत्तर काव्यों की विशेषताएँ या प्रवृत्तियां न होकर वे ही विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो छायावाद में थीं।

इस अवधि के छायावाद का इतिहास मूलतः निराला और पन्त के काव्य-विकास का इतिहास कहा जा सकता है। वैसे छायावाद की शैली में मिलाने वाले और भी बहुत से लोग आए, किन्तु उनमें अपना कोई उन्मेष नहीं। वे इस धारा को स्फीति भले ही दे सके हो, कोई वैशिष्टय नहीं प्रदान कर सके। इसलिए उनकी चर्चा अनापेक्षित है। महादेवी जी की 'दीपशिखा' उनकी रचनाओं के क्रम में रूप में आई। इसलिए उन्हें भी पहले की महादेवी से मूलतः अलग नहीं किया जा सकता और फिर उसके बाद तो वे मौन हो गई।

● निराला –

निराला के गीत छायावाद से अलग न हटकर उसकी सम्भावनाओं से निर्मित हैं। किंतु उनमें एक बहुत बड़ी शक्ति का विकास होता गया है वह है लोकोन्मुखता। निराला की छायावादी कविताओं में निराला का लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही झलकता रहा है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक-सम्पृक्त रहा है। इसलिए वे स्वभावतः प्रेम सौन्दर्य के बोध के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को अपने में समेट लेते हैं और व्यक्तिगत प्रणय के ही गीत न गाकर लोक जीवन के सुख-दुःख को यातना और संघर्ष को गहराई से उभारते हैं और उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी एकान्तवासिनी न रहकर प्रायः लोकगन्ध से उष्ण हो उठती है। निराला की यह विशेषता प्रस्तुत अवधि में अधिक विकसित होती गई है। उनकी यह लोकोन्मुखता दो रूपों में आई। 1. छायावाद से एकदम अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताएँ लिखी, 2. उनकी छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवादी कविताओं में छन्द, भाषा और भावभूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त हैं। कुकुरमुत्ता, गर्म पकौड़ी, प्रेम संगीत, रानी और कानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्स, स्फटिक शिला और नए पत्ते की अधिकांश कविताएँ इस प्रकार की कविताएँ हैं। इनमें प्रगतिशीलता अपने दार्शनिक रूप में नहीं हैं, बल्कि लोकानुभूतियों के रूप में है। इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है। इनमे लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार निराला इस बात को समझते थे कि लोक जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य, व्यापार में नहीं लिया जा सकता, उसके लिए उसको भाषा भी आवश्यक होती है, दूसरी ओर, पन्त इस बात को समझते हुए भी इसे चरितार्थ नहीं नहीं कर सके।

अणिमा, अर्चना, आराधना आदि में संकलित इधर की छायावादी कविता में निराला ने एक ओर तो स्वानुभूतिपरक स्व गीत लिखे हैं तथा दूसरी ओर विजयलक्ष्मी पंडित, प्रेमानन्द जी, सन्त रविदास, प्रसाद जी, महात्मा बुद्ध आदि विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं। ये गीत कई तरह के हैं- इनमें प्रेम की संवेदना भी है और प्रार्थनापरकता भी। अन्य प्रकार की मानवीय सेवेदनाएँ भी इनमें व्यक्त हुई हैं। ये सभी बातें निराला की 1938 ई. से पहले की कविताओं में भी हैं, उनका अनुपात भले हो थोड़ा भिन्न हो। 'तुलसीदास' इस अवधि की इनकी विशिष्ट देन है। इसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का संकल्प है। निराला की इस अवधि की नई देन है-उनकी लोकवादी कविताएँ, जो वास्तव में कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती, वरन् वस्तु और भाषा के एक नए प्रयोग के रूप में ही महत्त्व प्राप्त करती है। ये कविताएँ एक ठहराव को तोड़ती है और कवि को पुनः समग्र भाव से जन-जीवन से जोड़ती है। निराला की इस अवधि की कविताओं में उनकी जीवनाभूति के जो स्वर उभरे उनमें टूटन और पराजय भी थी। टूटन और पराजय की यह प्रवृत्ति कवि को भक्ति की ओर उन्मुख करती है। साथ ही कवि का असन्तुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव का कुछ ऐसा मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएँ उलझे प्रभाव से ग्रस्त हो गई हैं।

● सुमित्रानन्दन पंत –

पन्त जी के इस काल के काव्य-साहित्य का विश्लेषण किया जाए तो ऐसा प्रतीत होगा कि ये अपने चिन्तन और विषय में अधिक विकासशील रहे और चूंकि ये अपने संस्कार और भाषा में मूलतः छायावादी रहे, अतः यह कहा जा सकता है कि पन्त के माध्यम से छायावाद को इस अवधि में नया चिन्तन और नया विषय जगत प्राप्त हुआ है। सन 1936 में 'युगान्त' की घोषणा कर पन्त ने 1939 में 'युगवाणी' और 1940 में 'ग्राम्या' की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक

और जन–जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुए। यहां निराला और पन्त के अन्तर को समझ लेना चाहिए। निराला ने चिन्तन के माध्यम से नहीं, संवेदना और अनुभव के माध्यम से जन–जीवन को ग्रहण किया। इसलिए उनकी कविताओं में मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं पा सका, वहाँ जनजीवन अपने समस्त संवेदन के साथ उभरा। दूसरी ओर पन्त ने मार्क्सवादी दर्शन को चिन्तन के स्तर पर स्वीकार किया। वे प्राय: मार्क्सवादी सिद्धान्तों को ही व्यक्त करते रहे हैं –

कहता भौतिकवाद वस्तु जग का कर तत्त्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अन्तर दर्पण,
स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अन्तराल परिवर्तन।

कहना न होगा कि कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि से आलोक में गाँव के जीवन की विविध यथार्थ छवियों का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि कुशल शिल्पी पन्त ने गाँव के जीवन–यथार्थ को जितना उसके रंग रूप में पकड़ा है, उतना भीतर चेतना में नहीं।

यह बात तब और भी स्पष्ट हो उठती है जब पन्त जी ग्राम्या से आगे की यात्रा में अरविन्द दर्शन से प्रभावित हो उठते हैं। बीच में प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर भटके हुए उनके विचार पुन: आध्यात्मिक लोक की ओर उठने लगते हैं। इस प्रकार विचार के स्तर पर छायावाद को एक नई दिशा और समृद्ध आधार प्राप्त होता है। कवि मार्क्स के भौतिकवाद से सन्तुष्ट नहीं है। किन्तु पिफर भी उसे आवश्यक मानता है। कवि आरम्भ से ही मनुष्य–मात्र के सुख, प्रेम, शान्ति का स्वप्न देखता रहा है। इस चायवी स्वप्न को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद में उसे आलोक दिखाई पड़ा, किन्तु पुन: उसे ऐसा लगा कि मार्क्सवादी एकांगी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। अत: कवि इसे आवश्यक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानता और अरविन्दवाद में भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद का समन्वय ढूंढता है। कवि ने स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, शिल्पी, लोकायतन आदि परिवर्ती कृतियों में इसी समन्वय को स्वर दिया है। इस विकास यात्रा में पन्त का काव्य–पक्ष आहत हो गया है, धारणा पक्ष उठता गया है। कारण यही है कि वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधान और नए विचारों को धारणा ओर अकांक्षा के स्तर पर स्वीकार करते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। इसलिए चाहे मार्क्सवाद हो, चाहे अरविन्दवाद–वह पन्त काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक प्राय: नहीं हुआ है।

● महादेवी वर्मा –

महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' में उनकी क्रमागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। प्रेम उनका मुख्य विषय है। कवयित्री ने संयोग और वियोग में उभरने वाले प्रेम के अनेक कोणों को अपने अनुभव के आलोक में देखा है। वेदना महादेवी की मूल संवेदना है. यह वेदना विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा आक्रान्त इनका प्रारम्भिक काव्य 'दीपशिखा' में कुछ आलोक पा सका है– आशा का, उल्सास का, मिलन का।

यथा–

(i) सब बुझे दीपक जला लूँ।
बिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(ii) हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन
अगह धूम सी सांस सुधिगन्ध सुरभित।

महादेवी में गीतिकाव्य के उत्कर्ष की सुन्दर भावनाएँ हैं, लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुछ कुण्ठित कर देता है। कवयित्री की लौकिक संवेदनाएँ रहस्यवादी आभास से लिपटकर निश्चय ही नए अर्थ का विस्तार करती हैं, किन्तु साथ ही अपनी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता और तीव्रता खो देती हैं। दीप, चन्दन, मन्दिर, क्षितिज, आकाश, करुण, धूल, मेघ, विद्युत, सागर आदि प्रतीक और शब्द बार–बार आते हैं और रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते

हैं। इन निजी और छायावादी सीमाओं के बावजूद महादेवी जी छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनको विशिष्ट कृति है। रहस्य और संकोच के आवरण के बावजूद कवयित्री की अतरंग निजता गीतों में बहती रहती है। जहाँ कहीं वह पारदर्शी हो जाती है या जहाँ समग्र दृश्य सिमटकर उसी की ओर संकेत करने लगते हैं वहाँ वे बहुत उत्कृष्ट गीतों की रचना करती हैं। महादेवी की दूसरी विशेषता है-सूक्ष्म चित्रात्मकता। ये चित्र रूपजगत् और भावजगत्-दोनों के हैं किन्तु रूप जगत् के चित्र भी कवयित्री के मानसिक सन्दर्भ में हो नियोजित होते हैं। लोक परिवेश और लोकभाषा से दूर, सीमित आत्मनुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द चयन, पद व सन्तुलन, बिम्ब- ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर लय में बहुत्त विशिष्ट हैं।

● जानकीवल्लभ शास्त्री –

शास्त्री जी मूलत: गीतकार हैं और इनके गीतों में छायावादी गीतों के ही संस्कार शेष हैं। ये गीत छायावादी गीतों से अधिक खुले हुए अवश्य हैं, किन्तु इनकी संवेदना और गूंज-अनगूंज प्राय: वैसी ही है। परम्परागत दर्शन संवेदन और भाषा से निर्मित ये गीत उत्तरछायावाद युग के गीतों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और इनका अपना आकर्षण है। रूप अरूप, शिप्रा, मेघगीत और अवन्तिका इनकी प्रमुख काव्य-कृतियां हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त उत्तरछायावाद के अन्य उल्लेख्य कवि हैं- रामकुमार वर्मा ('अंजलि', रूपराशि, चित्ररेण, चन्द्रकिरण और एकलव्य), सुमित्राकुमारी सिन्हा (विहाग, पथिनी) और विद्यावती कोकिल (अंकुरिता और सुहागिन)।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उत्तरछायावादी काव्य में छायावादी काव्य की विरासत को इन कवियों ने पूरी भावप्रवणता और छायावादी काव्य की आत्मा के अनुरूप संभाला है। उत्तरछायावादी काव्य के कवियों की संख्या अधिक नहीं है। परन्तु, जो कवि छायावाद की परिसीमा के बाद भी छायावादी काव्य की विशेषताओं को अपने काव्य में संयोजित कर काव्य सृजन करते रहे हैं, उनका संवेदन और उनकी काव्य प्रवृत्तियाँ वही हैं, जो छायावाद का मूलाधार है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. पंत का जन्मकाल क्या है?

प्र.2. दीपक और बादल किसके प्रिय प्रतीक थे?

प्र.3. 'पल्लव' के रचनाकार कौन है?

प्र;4. जानकी वल्लभ शास्त्री का जन्म वर्ष क्या है?

10.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि उत्तर छायावाद ने ही प्रगतिवाद के लिए ठोस भूमि तैयार की। उत्तर छायावाद अपने सामान्य अर्थ में छायावाद के उत्तर चरण का बोध कराता है। किन्तु प्रयोग की दृष्टि से इसके अन्तर्गत छायावाद के उत्तरकाल में रचित राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएँ तथा वैयक्तिक प्रगीतों की वह धारा आती है जिसे मस्ती व जवानी का काव्य कहा जाता है।

10.5 कठिन शब्दावली

प्रतिष्ठा - मान, प्रतिबंध

देशानुराग - देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति

अस्पृश्य - अछूत

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1900
2. महादेवी वर्मा
3. पंत.
4. 1916 ई.

10.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामसजन पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

2. राम कुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

10.8 सात्रिक प्रश्न

प्र०1. महाकवि निराला की साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र०2. उत्तर छायावाद से आप क्या समझते है। स्पष्ट करें।

प्र०3 महादेवी वर्मा की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

*****

इकाई – 11
छायावादी काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ

संरचना

11.1 भूमिका

11.2 उद्देश्य

11.3 उत्तरछायावादी काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ

11.3.1 प्रगतिवाद

11.32 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ

स्वयं आकलन प्रश्न

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भित पुस्तकें

11.8 सात्रिक प्रश्न

11.1 भूमिका

इकाई दस में हमने उत्तरछायावादी काव्यधारा के उद्भव एवं विकास का गहनता से अध्ययन किया। इकाई ग्यारह में हम उत्तरछायावादी काव्यधारा की विविध प्रवृत्तियाँ, प्रगतिवाद एवं प्रगतिवाद की प्रमुख साहित्यिक विशेषताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इकाई ग्यारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. उत्तरछायावादी काव्यधारा की विविध प्रवृत्तियाँ क्या है?
2. प्रगतिवाद की परिभाषाएँ क्या है?
3. प्रगतिवाद का अर्थ क्या है?
4. प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

11.3 उत्तरछायावादी काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ

11.3.1 प्रगतिवाद

हिंदी साहित्य में काल्पनिकता विरोध में जो यथार्थ की कविता उभरकर सामने आई, वह प्रगति कहलायी। हिंदी काव्य में प्रगतिवाद का आरंभ छायावाद के हास सन् 1936 से माना जाता है क्योंकि सन् 1936 में ही प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी। जिसमें कविता की प्रगति सबंधी नए आयाम प्रस्तुत किए गए। समीक्षक प्रगतिशील और प्रगतिवादी साहित्य को एक ही स्वीकारते हैं जबकि राजनीतिक क्षेत्र में जिसे साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दार्शनिक क्षेत्र में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कहलाता है। साम्यवादी या मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार निर्मित कविता प्रगतिवादी कविता है और नई, विशेष विचारधारा को लेकर आगे बढ़ने वाली वादारहित कविता 'प्रगतिशील कविता' कहलाती है। प्रगतिवाद की कतिपय प्रमुख प्रवृत्तियां द्रष्टव्य है: –

11.3.2 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएं

1. सामाजिक यथार्थ दृष्टि – प्रगतिवादी कवियों ने समाज तथा प्रकृति को यथार्थ दृष्टि से देखा है। पन्त 'ग्राम्या' में ग्रामश्री का अंकन है। ग्रामश्री के साथ उन्होंने संध्या के धुंधलके में चिमनी जलाये के ऊँघते हुए दुकानदारों को दे‌ा तथा अशिक्षा, अन्धविश्वासों और पिछड़ेपन के प्रतीक ग्राम देवता को भी। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन के काव्य में ग्राम्य-प्रकृति के संजीव एवं यथार्थ चित्र मिलते हैं। केदारनाथ अग्रवाल का फसलों के स्वयंवर में सम्बन्धित निम्नलिखित प्रकृति-चित्र द्रष्टव्य है-

एक बीते के बराबर यह हरा ठिगना चना,
बाँबे मुरैठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का,
सजकर खड़ा है,
और सरसों की न पूछो, हो गई सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिए हैं, व्याह मण्डप में पधारी
देखता हूँ मैं स्वयंवर हो रहा है।

प्रगतिशील कविता का सामाजिक यथार्थ गाँव तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ नागरिक जीवन के विभिन्न रूपों, अगों तथा उसकी विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति भी इस काव्य में मिलती है। जिस प्रकार ग्राम्य-जीवन की धुरी किसान है, उसी प्रकार औद्योगिक नगरों का सारा ढांचा मजदूर की हड्डियों पर खड़ा है-

घाट, धर्मशालें, अदालतें,
विद्यालय, वेश्यालय सारे
होटल, दफ्तर, बूचड़खाने
मंदिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा
श्रमजीवी की उस हड्डी पर टिके हुए हैं।

निराला की 'तोड़ती पत्थर', 'अरुण' की 'रिक्शावाला', 'जयनाथ 'नलिनी' की 'समुद्र साहसी', रांगेय राघव की 'हरिजन' आदि कविताओं में मजदूरों की करुण-दशा को अंकित करने वाले अनेक चित्र हैं। दिनकर ने भी सामाजिक विषमताओं का अंकन करते हुए श्रमिकों के शिशुओं की दयनीय अवस्था का चित्रण बड़े ही मार्मिक रूप से किया है-

श्वानों को मिलता वस्त्र दूध
भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर
जाड़ों की रात बिताते हैं
युवती की लज्जा बसन बेच
जब ब्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर
पानी सा द्रव्य बहाते हैं।

2. प्राचीन रूढ़ियों का विरोध – प्रगतिवादी कवि प्राचीन मान्यताओं, परंपराओं तथा रूढ़ियों को विकास में बाधक मानकर उनका विरोध करता हैं। उनके विध्वंस में ही उनका विश्वास है। पंत 'कैदी और कोकिला' में रूढ़ि विध्वंस के लिए ऐसा ही आह्वान करते हैं-

गा कोकिल बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन

वस्तुतः कवि क्रांति की भावना से नवनिर्माण चाहता है। पंत की भांति 'नवीन' कवि भी 'विप्लवकारी गायन' से प्रेरित करते हैं।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,

जिससे उथल पुथल मच जाये

3. नारी संबंधी दृष्टिकोण – प्रगतिवादी कवियों ने नारी के चित्रण में भी यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। नारी पुरूष की भांति स्थूल सृष्टि का अंक है। प्रगतिवादी कवियों ने रूपसी नारी का चित्रण न करके कृषकबालाओं एवं मजदूर–स्त्रियों का चित्रण किया है। उनके लिए नारी भी मजदूर एवं कृषक के समान शोषित है। इस शोषित नारी का सबसे वीभत्स रूप वेश्या का है। अंचल और रांगेय राघव ने वेश्या के जीवन के दर्द को अपनी कई कविताओं में व्यक्त किया है।

वस्तुतः प्रगतिवादी कवि नारी के प्रति स्वस्थ एवं नवीन दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे पुरुष की दासता में मुक्ति दिलाकर समानता प्रदान करते हैं। उनके विचार से नारी पुरुष की दासी नहीं वरन साथी है। कविवर पंत उसके सम्मान एवं स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं–

योनि नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठिता

उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।।

4. आस्था के स्वर – सामाजिक विषमता को देखकर प्रगतिवादी कवि वेदना और निराशा का अनुभव करते हैं, किन्तु उनका दृष्टिकोण आशावादी है। वे आस्था के स्वर को काव्य में प्रश्रय देते हैं। वे इस श्वास को लेकर चलते हैं कि सामाजिक विषमता को दूर करने में उन्हें सफलता मिलेगी। एक दिन समता का स्वर्ण–विहान अवश्य उदित होगा। श्रमिक एवं कृषक सुखी हो सकेंगे। कविवर 'पंत' की ये पक्तियां इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं–

जो सोये सपनों के तम में,

वे जागंगे, यह सत्य बात।

जो देख चुके हैं जीवन–निशीथ,

वे दखेंगे – प्रभात।

5. सामाजिक समस्याओं का चित्रण – प्रगतिवादी कवि देश एवं विदेश की सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यन्त सजग रहे हैं। इसी से काव्य जीवन के वास्तविक रूप को प्रतिबिम्बित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सका है। बंगाल का अकाल, महँगाई, दरिद्रिता, बेकारी आदि देशी और स्वेज नर के झगड़े, कोरिया–युद्ध आदि विदेशी समस्याओं पर इस धारा के कवियों ने काव्य रचना की है। इन्होंने खोखली स्वतन्त्रता पर भी व्यंग्य बाण छोड़े हैं। कविवर नागार्जुन का यह व्यंग्य द्रष्टव्य है –

'कागज की आजादी मिलती,

ले लो वो–दो आने में।

इसी समाजिक यथार्थ की दृष्टि से प्रगतिवादी कवियों ने मध्यवर्ग की कारुणिक स्थिति की समस्या को भी किया है।

6. ईश्वर और धर्म – प्रगतिवादियों की प्रगतिशील चेतना ने ईश्वर और धर्म के प्रति उदासीनता हो व्यक्त की है। इसके मूल में भौतिकवादी दृष्टि ही प्रमुख है। मार्क्सवादियों ने अपनी विचारधारा में ईश्वर और धर्म दोनों के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया था। इनके काव्य में इन दोनों का ही खुलकर विरोध हुआ है। यह विरोध उन प्राचीन मान्यताओं के प्रति है जो रूढ़ियाँ बन गई हैं और हमारा समाज जिन्हें अपनी थाती समझकर जाने–अनजाने ढो रहा है। नागार्जुन ने कलकत्ता की काली माई पर व्यंग्य करते हुए कहा–

कितना खून पिया है जाती नहीं खुमारी

सुख और लम्बी है मैया जीभ तुम्हारी

स्पष्ट है कि धर्म और ईश्वर के प्रति व्यंग्य-भरी उपेक्षा प्रगतिवादियों में मिलती है।

7. व्यंग्यात्मकता – प्रगतिवादी कवि पाखण्ड, अन्याय तथा विलासिता पर तीखे व्यंग्य-बाण छोड़ने में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं करता है। उसे मिथ्या प्रदर्शन एवं पाखण्ड अमान्य है। वह झूठे देशभक्तों पर व्यंग्य करता है –

लाज शरम रह गई न बाकी

गांधीजी के चेलों में

प्रगतिवादी कविता का व्यंग्य भी तीखा है। नागार्जुन व केदारनाथ आदि में व्यगय का नया रूप मिलता है। केदारनाथ ने निकम्मे व्यक्तियों पर अच्छा व्यंग्य किया है–

धोबी गया घाट पर

राही गया बाट पर

मैं न गया घाट और बाट पर

बैठा रहा टाट पर

जीता रहा ओल चाट–चाटकर।

नागार्जुन व्यंग्यों के शिल्पी हैं। राजनीतिक नेताओं, सरकारी, गैर-सरकारी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, बेईमानी, रईसों के ऐशोआराम, मंत्रियों और मठाधीशों की वासना-लोलुप दृष्टि सभी नागार्जुन की व्यंग्य-चेतना में समा गये हैं। प्रगतिवादियों में नागार्जुन का व्यंग्य अलग से पहचाना जा सकता है। आगे चलकर नयी कविता में जिस व्यंग्य का विकास हुआ है, उसके लिए नागार्जुन का व्यंग्य पृष्ठभूमि का काम करता है।

8. लोक जीवन का चित्रण – प्रगतिवादी काव्य में लोक जीवन की मधुर स्मृतियाँ हैं। नगरों एवं ग्रामों की सामान्य जनता के आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा बोली आदि के सुन्दर चित्र प्रगतिवाद में मिलते हैं। विशेष रूप से ग्राम्य जीवन की संस्कृति को उभारने में इन कवियों का विशेष योगदान है। नागार्जुन, केदारनाथ, रामविलास शर्मा, रांगेय राघव तथा पन्त के काव्य में विविध अंचलों की संस्कृति छवियों को सहज देखा जा सकता है। इस प्रकार प्रगतिवादी कवि अपनी धरती, अपनी जनता तथा उसके जीवन से जुड़ा हुआ है। मुक्तिबोध की कविता का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है–

भई सांझ, कदम्ब वृक्ष पास

मन्दिर चबूतरे पर बैठकर

जब कभी देखता हूँ तुझको

मुझे याद आते हैं–

भयभीत आंखों के हंस व घाव भरे कबूतर

मुझे याद आती है लाल लाल जलती हुई ढ़िबरी।

मुझे याद आता है मेरा प्यारा प्यारा देश।

9. प्रणय भावना – प्रगतिवादी काव्य में प्रेम सम्बन्धी दुख-दर्द का भी चित्रण है। प्रेम की व्यथा को प्रगतिवादी कवियों ने भी अनुभव किया है। उनकी विशिष्टता यह है कि प्रेम तथा उनसे सम्बन्धित वेदना को उन्होंने पांव की श्रृंखला नहीं बनने दिया। उनका स्वच्छन्द प्रेम भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक है। उनका प्रेम सम्बन्ध सामाजिक भावना को भी बल देता है। त्रिलोचन का अनुभव है–

मुझे जगत् जीवन का प्रेमी, बना रहा है. प्यार तुम्हारा।

प्रणय-सम्बन्धी कविताओं में दाम्पत्य प्रेम कौ मार्मिक अभिव्यंजना प्रगतिवादी काव्य की अपनी विशिष्टता है।

10. राष्ट्रीय भावनाएं – प्रगतिवादियों की राष्ट्रीय विचारधारा कई रूपों में व्यक्त हुई है। उनमें से वे रूप प्रमुख हैं 1. विदेशी दासता के विरोध प्रदर्शन में 2. पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध में, 3. वृद्ध का विरोध करते हुए शांतिप्रसाद के रूप

में 4. 'सामाजिक सुधारों के रूप में। प्रगतिवादियों के सामंतवाद और साम्प्रदायिकता का कड़ा विरोध किया तथा जनता को शांति और सहजीवन के लिए प्रेरित किया। सुमन आदि ने पूजीवाद के विरोध के साथ-साथ वर्ग विषमता के चित्र भी प्रस्तुत किये -

बिक रहा पूत नारीत्व जहां चाँदी के थोथे टुकड़ों में
कर्त्तव्य पालता धनिक वर्ग मदिरा के जूठे टुकड़ों में

प्रगतिवादी कवि देश की धरती तथा गांव और जनपदों से प्रेम करता है। नागार्जुन के हृदय में मिथिला (मातृभूमि) के लिए हूक है और वह प्रवास के समय तड़पकर कह उठते हैं-

यहाँ भी, सच है, न मैं असहाय
यहाँ भी है व्यक्ति और समुदाय
किन्तु जीवन भर रहूं पिफर भी प्रवासी ही कहेंगे।

11. मार्क्स और रूस की प्रशंसा– प्रगतिवादी कवि साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स और रूस जहाँ उनकी विचारध ारा विकसित हुई, उनकी प्रशंसा मुक्त कंठ से करते हैं। इन दोनों का विरोधी उन्हें कृषकों एवं श्रमिकों का शत्रु प्रतीत होता है उसे ये मानव मात्र का शत्रु भी मान लेते हैं। श्री नरेन्द्र धामों की ये पंक्तियां इसी तथ्य को पुष्ट करती है-

लाल रूस का दुश्मन साथी
दुश्मन सब इन्सानों का
दुश्मन है सब मजदूरों का,
दुश्मन सभी किसानों का।

12. प्रकृति चित्रण – छायावादी कविता में प्रकृति की अंतिम सुषमा मिलती हैं। लेकिन प्रगतिवादी कविता में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण प्रकृति का वह रूप नहीं उभर पाया जो छायावाद में था। प्रकृति का वर्णन कवियों ने किया है किंतु उसमे रसात्मकता नहीं है।

13. मानवतावादी दृष्टिकोण – प्रगतिवादी कवि समस्त मानवता का उद्धार चाहता है। वह मानव समाज के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हैं उसे समानता प्रिय है, वह घायल मानवता को स्वस्थ देखना चाहता है। कविवर नरेन्द्र शर्मा कहते हैं-

जाने कब तक घाव भरेंगे इस घायल मानवता के ?
जाने कब तक सच्चे होंगे, सपने सबकी समता के ?

14. बौद्धिकता की प्रधानता – प्रगतिवादी काव्य में भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता की प्रधानता मिलती है। इस धारा के कवि तर्क, चिंतन आदि को प्रश्रय देते हैं। इसी में ये धोथी भावुकता को त्यागने और दलितों के कल्याण को अपना अभिष्ट बनाते हैं। उन्हें ताजमहल की सुन्दरता भी अखरती है-

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन

15. भाषा–शिल्प– प्रगतिवादी कविता के संबंध जब भी कभी शिल्प की चर्चा की जाती है तो यह बात बार-बार दुहराई जाती है कि यह शिल्प के प्रति उदासीन है, उसकी भाषा ऊबड़-खाबड़ है तथा उसकी छंद-योजना बासी और उखड़ी हुई है। इस कथन में सत्यता का अंश है, किंतु यह भूलने भुलाने की बात नहीं कि भाषा को जनजीवन के स्तर पर लाने का श्रेय प्रगतिवादियों की ही हैं नागार्जुन और त्रिलोचन की भाषा आम जनता की भाषा है, उसमें मुहावरे और लोकोक्तियों का गौरव सुरक्षित है। वस्तुतः प्रगतिशील काव्य की 'भाषा: रेशम की तरह मुलायम न होकर खुरदरी है। यह बात अलग है कि आजकल 'खादी' भी कमजोर और दिखावटी हो गई।

16. प्रतीकात्मकता – अमूर्त के लिए सूर्य का विधान प्रतीक कहलाता है। प्रतीकों से भाषा में नई अर्थवत्ता भरी जाती है। कई बार प्रतीक अलंकार का काम भी करते हैं। प्रगतिवादियों मे परम्परागत और आधुनिक दोनों प्रतीक अपनाए हैं। इन कवियों ने 'रात कोयले की खान सी' कहा है। इसी प्रकार केदारनाथ अग्रवाल की ये पंक्तियां देखिये जिनमें जनता के जीवन को 'दी की टोकरी-सा' बतलाया गया है। रही की टोकरी की गोद में पड़े कागज के चिरे-फटे टुकड़े जैसे व्यर्थ संज्ञाहीन से पड़े रहते हैं वैसे ही आज समाज की गोद में व्यक्ति अर्थहीन और संज्ञाहीन पड़ा है।

आज मानवता भी संतप्त और त्रसित है। तभी तो प्रगतिवादियों ने उसकी उपमा 'फूटे बर्तन' से दी है। 'फूटे बर्तन-सी तिरस्कृता जब मानवता' यह उपमान सटीक तो है ही, नवीन भी है। फूटा बर्तन जिस प्रकार उपेक्षित हो जाता है, वैसे ही मानवता स्थिति है।

17. बिम्ब-विधान- प्रगतिवाद की खुरदरी, किंतु सारपूर्ण कल्पना ने जीवन के यथार्थ से प्रेरित हो अनेक वस्तुवर्गीय बिम्बों का सृजन किया। वस्तु बिम्बों में स्थिर और गत्यात्मक दोनों ही श्रेणियों के बिम्ब मिलते हैं। नागार्जुन की ये पंक्तियां देखिये :

पूस मास की धूप सुहावन
फटी वरी पर बैठा है चिर सेगी बेटा,
राशन के चावल के कंकड़ बीन रही पत्नी

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी काव्य पूर्णतः सामाजिक यथार्थ का काव्य है जिसकी धुरी में मार्क्सवादी विचारधारा सक्रिय है। यह काव्य छायावादी काल्पनिकता से निकालकर सामाजिक यथार्थ की कर्कश भूमि पर लाने वाला है। क्रांतिमूलक इस काव्य में वर्ग संघर्ष पर बल देते हुए शोषकों के प्रति घृणा और शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है। इनकी यथार्थपरक दृष्टि ने प्रकृति, प्रेम, नारी, ईश्वर और धर्म को चश्मे से देखने को भी बाध्य किया।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 प्रगतिवाद की समय सीमा क्या है?

प्र. 2. साहित्य के क्षेत्र में जो प्रगतिवाद है राजनीति के क्षेत्र में उसे क्या कहा जाता है।

प्र. 3. नागार्जुन किस वाद से जुड़े है?

11.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह समाज को शोषक और शोषित के रूप में देखता है। प्रगतिवादी शोषक वर्ग के खिलाफ शोषित वर्ग में चेतना लाने तथा उसके संगठित कर शोषण मुक्त समाज की स्थापना की कोशिशों का समर्थन करता है। यह पूंजीवाद, सामंतवाद, धार्मिक संस्थाओं को शोषक के रूप में चिन्हित कर उन्हें उखाड़ फेंकने की बात करता है।

11.5 कठिन शब्दावली

अनुपम - अनूठा

परिपक्व - प्रौढ़

प्रख्यात - प्रसिद्ध

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1936-1942

2. मार्क्सवाद

3. प्रगतिवाद

11.7 संदर्भित पुस्तकें

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास
2. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्यिक का दूसरा इतिहास

11.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1 प्रगतिवादी काव्य क्रांतिकारी काव्य है स्पष्ट कीजिए।

प्र.2 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र.3. प्रगतिवाद में नागार्जुन का स्थान स्थान निर्धारित कीजिए।

*****

इकाई – 12
प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

संरचना

12.1 भूमिका

12.2 उद्देश्य

12.3 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

- नागार्जुन
- केदारनाथ सिंह
- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
- केदारनाथ अग्रवाल
- त्रिलोचन
- शिवमंगल सिह सुमन
- डॉ. रामविलास शर्मा
- डॉ. रांगेय राघव

स्वयं आकलन प्रश्न

12.4 सारांश

12.5 कठिन शब्दावली

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

12.7 संदर्भित पुस्तकें

12.8 सात्रिक प्रश्न

12.1 भूमिका

इकाई ग्यारह काव्यधारा की प्रमुख प्रवृतियों, प्रगतिवाद एवं प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई बारह में हम प्रगतिवाद के प्रमुख कवि एवं उनकी साहित्यिक रचनाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इकाई बारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. प्रगतिवाद का अर्थ क्या है?
2. प्रगतिवाद की परिभाषाएँ क्या है?
3. प्रगतिवाद का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ?
4. प्रगतिवाद के प्रमुख कवि कौन–कौन से है?
5. नागार्जुन की साहित्यिक विशेषताएँ क्या है?

12.3 प्रगतिवाद के प्रमुख कवि

● नागार्जुन (सन् 1910 – 1998) – नागार्जुन प्रगतिवादी कवियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र था। इनका जन्म तरौनी (दरभंगा, बिहार) में सन् 1911 में हुआ। वे जनजीवन और प्रकृति के चितेरे साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में मिथिला की धरती के सुख–दुख को व्यक्त किया है। 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथराई आंख', 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथराई आंखें', 'तालाब की मछलियां।', 'तुमने कहा था', 'हजार

हजार बाँहों वाली', 'पुरानी जूतियों का 'कोरस', 'भस्मांकुर' आदि इनकी रचनाएं हैं जिनमें युग-जीवन के यथार्थ का अंकन हैं उनकी समस्त कविताएं यथार्थ की ठोस भूमि पर टिकी हैं। इनके व्यंग्य बड़े सशक्त हैं। शोधक सत्ताओं तथा जर्जर रूढ़ियों पर नागार्जुन ने व्यंग्य-प्रहार किए हैं। इनकी भाषा सरल तथा शैली अनगढ़ है, फिर भी कवि की दृढ़ आस्था, भावों की उदात्तता तथा लोक-जीवन का चित्रण इनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। 'बादल को घिरते देखा है', 'सिंदूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दन्तुरित मुस्कान' आदि इनकी उत्तम कविताएं हैं। व्यंग्यात्मकता का एक उदाहरण देखिए -

आजादी की कलियां फूटीं,
पांच साल में होंगे फूल,
पांच साल से पुल निकलेंगे,
रहे पन्त जी झूला झूल।
पांच साल कम खाओ भैया
गम खाओ दस पन्द्रह साल,
अपने ही हाथों से झौंकों
यो अपनी आंखों में धूल।

नागार्जुन की कविता को सर्वप्रमुख विशेषता मानव जीवन से उसका गहन भाव से जुड़े होना है। वे साहित्य और राजनीति में समान रूप से रुचि रखने वाले प्रगतिशील साहित्यकार हैं। वे धरती, जनसामान्य और श्रम के गीत गाने वाले संवेदनशील कवि हैं। काव्य में कबीर की सी सहजता है।

● **केदारनाथ सिंह (1934 से अब तक) –** इनका जन्म 7 जुलाई, 1934 ई. को चकिया गांव, जिला बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ। काशी हिन्दी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. पास होने के बाद वहीं से आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान विषय पर इन्होंने पी.एच.डी. किया। आजकल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

वे मूलत: मानवीय संवेदनाओं के कवि हैं। अपनी कविताओं में उन्होंने बिम्ब-विधान पर अधिक जोर दिया है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में शोर-शराबा नहीं अपितु विद्रोह का एक शांत संयत स्वर सशक्त रूप उभरता है। 'जमीन पक रही है' संकलन में जमीन, रोटी, बेल इत्यादि उनकी इसी प्रकार की कविताएं हैं। संवेदना एवं विचारबोध उनकी कविताओं में साथ-साथ चलते हैं।

जीवन के बिना प्रकृति व वस्तुएं कुछ भी नहीं हैं-यह अनुभूति उन्हें अपनी कविताओं में मानव के और समीप ले आई है। इस प्रक्रिया में केदारनाथ सिंह की भाषा भी नग्न, तथा पारदर्शक हुई है और उसमें एथ नवीन जुता और बेलोसपन का संचार है। उनकी कविताओं में प्रतिदिन के जीवन के अनुभव परिचित बिम्बों में परिवर्तित होते दिखाई देते है। शिल्प में बातचीत की सहजता तथा अपनापन अनायास ही दिखाई पड़ता है।

इनके तीन काव्य-संग्रह छपे हैं अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है तथा यहाँ से देखो। कल्पना और छायावाद उनका आलोचनात्मक ग्रंथ है। उनकी भी हुई कविताओं का संग्रह: प्रतिनिधि कविताएं नाम से प्रकाशित हुआ है। तीसरा सप्तक के संकलित कवियों में केदारनाथ सिह की विशेष चर्चा रही है।

● **रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (1915 ई.) –** अंचल जी के पिता माधुरी के सुप्रसिद्ध संपादक पंडित मातादीन शुक्ल थे। अंचल जी का जन्म 1915 में कृष्णापुर जिला फतेहपुर में हुआ था। इनकी शिक्षा लखनऊ और नागपुर विश्वविद्यालयों में हुई। इस समय जबलपुर के कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। अंचल बड़े भावुक कवि हैं। ये एक प्रगतिशील उपन्यासकार भी हैं। इनकी मुख्य काव्य-कृतियाँ हैं- मधूलिका अपराजिता, किरण वेला. तारे, वे बहुतेरे, करील, लाल चूनर, वर्षान्त के बादल अंचल स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के सीमा पर है। वासनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति इनकी कला का एक विशेष गुण है। इनकी रचना में वासनात्मक तृष्णा और लालसा की अभिव्यक्ति हुई है, परन्तु इन्होंने अनेक रचनाओं में क्रांति का आह्वान

भी किया है।। क्रांति युग के संधि कालीन कवि है। इनकी कृति वर्षान्त के बादल में सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति है। इन चित्र बड़े ही हृदयग्राही हैं। अंचल जी के शब्द भाव की पूर्ण एवं समर्थ अभिव्यक्ति करने वाले हैं।

● **केदारनाथ अग्रवाल** (1911 ई.) – केदारनाथ अग्रवाल के काव्य–जीवन का आरम्भ छायावादी पृष्ठभूमि में हुआ, परन्तु अधिकांशतः उनके काव्य में प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थ का स्वर सुनाई देता है। 'नींद के बादल', 'युग की गंगा', 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं।', 'आग का आईना', 'समय–समय पर', 'अपूर्वा', 'जमुना जल तुम', 'शाष्वत सत्य', 'कंकरीला मैदान', 'जनहारी हरियाली' आदि केदार की प्रमुख रचनाएं हैं। इन रचनाओं में सामयिक जीवन की विकृतियों एवं विषमताओं के प्रति विद्रोह है। स्वर है। केदार में साम्यवाद के प्रति दृढ़ आस्था है–

काटो–काटो–काटो कर लो,
साइत और कुसाइत क्या है।
मारो मारो मारो हँसिया
हिंसा और अहिंसा क्या है।

डॉ. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में ''इन कविताओं में न केवल आस्था और विश्वास से युक्त केदार का पौरुषवाद कवि ही बोलता है।'' केदार की रचनाओं की अनुभूतिगत ईमानदारी प्रशंसनीय है। उन्होंने किसान की तरह जीवन को जोतकर कविता को बोया और काटा है। प्रकृति के अछूते सौंदर्य को लोकबिम्बों के माध्यम से केदार ने मूर्त रूप प्रदान किया है।

● **त्रिलोचन** (1917 ई.) – त्रिलोचन बड़े सशक्त प्रगतिवादी कवि हैं। इनका जन्म 1917 ई. सुल्तानपुर (उ.प्र.) में हुआ। बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त करके इन्होंने काशी नगरी प्रचारिणी सभा में कुछ समय तक कार्य किया। कुछ समय तक अंग्रेजी के अध्यापक भी रहे। तदनन्तर साहित्य साधना में जुट गए। इनका प्रथम प्रगतिवादी चेतना का काव्य 'धरती' सन् 1945 में प्रकाशित हुआ। त्रिलोचन की इस संग्रह की कविताओं में छायावादी सस्कारों की कुछ–न–कुछ छाप है, परन्तु प्रगतिशील चेतना भी काफी उभरी है। त्रिलोचन की परवर्ती रचनाओं 'गुलाब और बुलबुल', 'दिगन्त', 'गीत गंगा', 'ताप के ताये हुए दिन', 'तुम्हें सौंपता हूँ', 'सबाक अपना आकाश', 'शब्द' आदि में भी सामाजिक यथार्थ की सुन्दर अंकन है। पूंजीवाद को मिटाये बिना कवि स्वस्थ जीवन का विकास असम्भव मानता है।

कथन का सहज ढंग तथा भाषा की सरलता इनकी प्रमुख विशेषता है। इनकी कविताएं आकार में लघु परन्तु प्रभाव में तीव्र हैं। इनकी प्रत्येक कविता में धरती की मोहक सुवास है। व्यर्थ सस्ता उद्बोधन इनमें नहीं। इन्होंने आत्मकथात्मक सानेट भी लिखे हैं।

● **'शिवमंगलसिंह 'सुमन'** (1916 ई.) – 'सुमन' का जन्म झगरपुरा ग्राम (उन्नाव, उ.प्र.) में 1916 में हुआ। काशी हिन्दी विश्वविद्यालय से इन्होंने एम.ए. और डी. लिट् की उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति भी रहे हैं। 'सुमन' के काव्य–जीवन की आरम्भ वैयक्तिक प्रणय की निराशापूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ, परन्तु प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित होकर वे वैयक्तिक भावनाओं से ऊपर उठकर सामाजिक चेतना गायक बन गए। 'हिल्लोल', 'जीवन के गान', 'प्रलय–सृजन' 'विश्वास बढ़ता ही गया' उनकी प्रगतिवादी रचनाएं हैं। प्रथम दो कृतियों में वैयक्तिक चेतना तथा सामाजिक चेतना का द्वन्द्व है तथा 'प्रलय सृजन' में प्रगति के स्वर मुखरित हैं। 'विश्वास बढ़ता ही गया' में आस्था की प्रभावी अभिव्यक्तियां हैं। 'पर आंखें नहीं भरी' में प्रगतिवादी स्वर क्षीण हो गए हैं। सुमन प्रगतिवादी कवियों में अनुभूतियों एवं भावों के कवि हैं। उनकी कृतियों में युग की विषमता का विरोध शोषितों के प्रति सहानुभूति का स्वर मिलता है। वस्तुतः सुमन छायावाद और प्रगतिवाद के संधि स्थल के कवि हैं।

● **डॉ. रामविलास शर्मा** (1912–2005 ई.) – डॉ. रामविलास शर्मा कवि की अपेक्षा समीक्षक के रूप में अधिक लोकप्रिय हैं। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' में उनकी कुछ कविताएं संकलित हैं। 'तारसप्तक' प्रयोगवादी कवियों की कविताओं का संकलन है, परन्तु शर्मा जी प्रयोगवादी की अपेक्षा प्रगतिवादी हैं। 'रूप–तरंग' नाम से उनकी कविताओं का एक पृथक संकलन भी प्रकाशित है। डॉ. शर्मा जितने ही समीक्षक के रूप में कठोर प्रतीत होते हैं कवि–रूप में उतने

ही भावप्रवण है। शर्मा की कविताओ में व्यंग्य भी प्रधान हैं। 'तारसप्तक' की 'सत्य शिवं सुन्दर' कविता इसी प्रकार की है। इनकी कुछ कविताएं वैयक्तिक स्तर की भी हैं। डॉ. शर्मा ने प्रगतिवादी शिल्प में नये प्रयेग भी किए हैं। उनकी भाषा में सरलता एवं स्पष्टता है। अस्थि-कृषक की एक चित्र देखिए -

इस धरती पर जो. अठवासे श्रम करते हैं,
उनके तन की पतों पर अब सू गया है रक्त,
रेत पर गिरी हुई जल की बूँदों-सा।

वस्तुत: सामाजिक संवेदना को आत्मसात् कर उसे सरल भाषा में प्रभावपूर्ण ढंग से कहने की सामर्थ शर्मा की कविताओं में है।

● **डॉ. रांगेय राघव (सन् 1923-1962) -** डॉ. रांगेय राघव मूलत: उपन्यासकार हैं, परन्तु प्रगतिवादी काव्य में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनका जन्म राजस्थान की भरतपुर रियासत में हुआ। इनके पूर्वज दक्षिण भारत के निवासी थे। इन्होने आगरा में उच्च शिक्षा प्राप्त की और कविता रचना की ओर प्रवृत्त हुए। इनकी काव्य-रचनाए हैं 'अजेय' 'खण्डहर', 'पिघलते पत्थर', 'राह के दीपक', 'मेधावी' 'रूपछाया' तथा पांचाली। 'अजेय खण्डहर' में स्तालिनग्राद के युद्ध के सजीव चित्र अंकित हैं। रांगेय राघव ने इसमें लाल सेना तथा रूस की वीर जनता के साहसं की सराहना की है. तथा फासिस्ट आक्रमण की बर्बरता को उभारा है तथा रूस की जनता के बलिदान का सम्बन्ध भारतीय जनता के साथ स्थापित किया है। 'पिघलते पत्थर' में साम्राज्यवाद, पूंजीवाद तथा सामंतवाद पर गहरी चोट है। 'राह के दीपक' में युग की विषमताओं का अंकन है। इस संग्रह के गीतों में भावप्रवणता दर्शनीय है। 'मेधावी', 'रूपछाया' तथा 'पांचाली' कवि के आख्यानक काव्य हैं। वस्तुत: प्रगतिवादी चेतना से सम्पन्न आख्यानक काव्य लिखने वाले वे एक ही कवि हैं। इस प्रकार विषयवस्तु तथा काव्यरूपों की दृष्टि से डॉ. रागेय राघव का काव्य-क्षेत्र अन्य प्रगतिवादी कवियों की अपेक्षा अधिक व्यापक है।

इनके अतिरिक्त उदयशकर भट्ट ने भी अपनी प्रगतिवादी कविताओं में जीर्ण सामाजिक मान्यताओं को चुनौती दी है। नरेन्द्र शर्मा 'अग्निशस्य' आदि कृतियों में पुराने संस्कारों से मुक्ति पाने के अतिरिक्त मार्क्सवाद का गुणगान किया है। दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता के साथ प्रगतिशीलता सहवर्तिनी है। सुधीन्द्र की 'प्रलंय वीणा' तथा 'शंखनाद' आदि में वर्ग-वैषम्य का विरोध तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति है। 'अंचल' ने प्रगतिवादी चेतना को सामयिक पफैशन के रूप में ग्रहण किया है। 'मिलिन्द' के गीतों में राष्ट्रीय भावना के साथ पूंजीवादी शोषण तथा साम्राज्यवादी प्रवृतियों के प्रति विद्रोह का स्वर मिलता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 नागार्जुन का जन्म कब हुआ?

प्र. 2 केदारनाथ अग्रवाल किस सप्तक के कवि है?

प्र. 3 त्रिलोचन का वास्तविक नाम क्या है?

12.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है प्रगतिवाद का समय 1936-1943 ई. तक माना गया है। सन 1934 में गोर्की के नेतृत्व में रूस में 'सोवियत लेखक संघ' की स्थापना हुई। यह विश्व का पहला लेखक संगठन था। भारत में प्रगतिवाद का पहला अधिवेशन 1936 ई. में लखनऊ में हुआ, जिसके प्रथम सभापति प्रेमचंद थे। इस अधिवेशन से हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत और स्थापना होती है।

12.5 कठिन शब्दावली

उद्धार - निस्तार, छुटकारा

स्वच्छंद - स्वतंत्र, मुक्त

शति - धरोहर

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन 1911 ई.
2. तीसरा सप्तक
3. वासुदेव सिंह

12.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. गणपति चंद्र गुप्त–हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

12.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1. प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों पर एक आलेख लिखिए।

प्र. 2. प्रगतिवाद में शोषितवर्ग का चित्रण हुआ है, स्पष्ट कीजिए।

प्र. 3 त्रिलोचन की साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई – 13
प्रयोगवादी काव्य और उसकी विशेषताएँ

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 प्रयोगवादी काव्य

13.1.3 प्रयोगवादी काव्य की विशेषताएँ

स्वयं आकलन प्रश्न

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्दावली

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तकें

13.8 सात्रिक प्रश्न

13.1 भूमिका

इकाई बारह में हमने प्रगतिवाद के प्रमुख कवि एव उनकी रचनाओं का गहन अध्ययन किया। इकाई तेरह में हम प्रयोगवादी काव्य एवं प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं का विस्तापूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके साथ–साथ में हम प्रयोगवाद के अर्थ एवं परिभाषाओ का भी अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इकाई तेरह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. प्रयोगवादी का अर्थ क्या है?
2. प्रयोगवाद की परिभाषाएँ क्या है?
3. प्रयोगवाद का आरंभ कब से माना जाता है?
4. प्रयोगवाद काव्य की विशेषताएँ क्या है?

13.3.3 प्रयोगवादी काव्य

हिदी साहित्य में प्रगतिवादी कविता से अलग हटकर जिस कविता ने नए विषयों, नए विचारों, नई भाष नए उपमानो के प्रयोग किए वह कविता प्रयोगवादी कविता कहलायी।

सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' से प्रयोगवाद का आरम्भ मान सकते हैं। श्री अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले इस कविता संग्रह मे अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर एव रामविलास शर्मा की कविताएं प्रकाशित हुई हैं। अज्ञेय ने इन कवियों को राहों का अन्वेषी कहा है।

सन् 1951 में 'तारसप्तक' का द्वितीय संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें शकुन्तला माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की कविताएं प्रकाशित हुई हैं। इसके बाद सन् 1959 में तीसरा और सन् 1971 में चौथा तारसप्तक भी निकाला।

कतिपय विद्वान प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग–अलग मानते हैं, किन्तु ये दोनों एक ही काव्यधारा के विकास की दो अवस्थाएं हैं। प्रयोगवाद उस काव्यधारा की प्रारम्भिक अवस्था है और नयी कविता उसकी विकसित अवस्था है।

वस्तुत: सन् 1954 में प्रयोगवादी कवियों की एक पत्रिका काव्य संग्रह रूप में 'नई कविता' निकली जिसका सम्पादन डॉ. जगदीश गुप्त ने किया तब से नई कविता का जन्म हुआ।

'छायावाद' आदि के नामकरण की भांति 'प्रयोगवाद' के नामकरण की भी हंसी उड़ाई गई क्योंकि इस नामकरण में कोई सार्थकता नहीं थी। प्रयोगवाद के कवियों को भी द्वितीय सप्तक में इस नामकरण पर क्षोभ हुआ और उन्होंने अपना असंतोष प्रकट करते हुए कहा कि ''प्रयोग तो सभी काल में कवियों ने किए हैं इसलिए हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना। पिफर भी 'प्रयोगवाद' नाम चल पड़ा तथा एक विशिष्ट काव्यधारा के लिए प्रयुक्त हो गया।

प्रयोगवाद के साथ 'नकेनवाद' 'प्रपद्यवाद', की प्रवृत्ति भी प्रकाश में आई, जिसने अपने को वास्तविक प्रयोगवादी कविता सिद्ध करने का प्रयास किया। यह नकेनवाद (नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश की कविता) वस्तुत: प्रयोगवाद की शाखा मात्र है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि प्रयोगवादी प्रयोगों को साधन मानते हैं, जबकि नकेनवाद उन्हें साध्य स्वीकार करता है। यहां संक्षेप में इसी प्रयोगवादी कविता की विशेषताएँ प्रस्तुत की जा रही है।

13.3.1 प्रयोगवादी काव्य की विशेषताएं

1. समसामयिक जीवन के प्रति आग्रह – प्रयोगवादी काव्य धारा सम-सामयिक जीवन से प्रभावित है। रिक्शों के भोंपू की आवाज, लाउडस्पीकर का चीत्कार, मशीनों को चीख, रेल के इंजन की सीटी सभी का हू-ब-हू चित्रण किया है। गिरिजाकुमार माथुर आधुनिक औद्योगिक युग को वर्णित करते हैं।

प्रयोगवादी कवि अपना सबंध देश-विशेष से ही न रखकर समस्त विश्व से जुड़ना चाहते हैं। वे विषय की किसी भी परिधि में बंधना ठीक नहीं समझते हैं। उन्होंने चीटी से लेकर हिमालय तक सब प्रकार के पदार्थों को अपनी कविता में स्थान दिया है। नमक, तेल लकड़ी, बाटा की चप्पल आदि तक इनकी कविता के विषय रहे हैं

उदाहरणार्थ -

दिन मर गया है और मैं मर गया हूँ
हींग और हल्दी से बासत मेरी बीवी प्रगर जिंदा है।

2. व्यक्तिवादिता – प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादिता की प्रधानता है। यह व्यक्तिवादिता छायावादी व्यक्तिवादिता के समान वायावी, रहस्यमय, कल्पनाशील एवं भावुक न होकर जटिल एवं बौद्धिक है। डॉ. शिवकुमार मिश्र व्यक्तिवाद को प्रयोगवाद का केन्द्रबिंदु मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद के कवियों पर बहुधा जिस असामाजिकता का आरोप लगाया जाता है, वह इसी व्यक्तिवाद का ही परिणाम है एवं उसे जिस व्याप्त और सामूहिक अनास्था, निराशा, नियति, पीड़ा, घुटन आदि विकृतियों का स्वरकार माना जाता है, उसका स्त्रोत भी यही व्यक्तिवाद एवं अहंवाद है। निस्सदेह प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की अपनी इकाई और विशिष्टता है जैसे नदी की धारा में नदी के द्वीप-

हम नदी के द्वीप हैं
स्थिर समर्पण है हमारा......
फिर छनेंगे हम–
कहीं फिर पैर टेकेंगे
कहीं फिर भी खड़ा होगा नए व्यक्तित्व का आकार

प्रयोगवादी कविता में विद्रोह का स्वर एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है तो दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्घोष रूप में विद्रोह का दूसरा रूप चुनौती और ध्वंस को बलवंती अभिव्यक्ति के रूप में उपलब्ध होता है। भारतभूषण अग्रवाल में 'स्वयं का ज्ञान' इतना अधिक प्रबल हो उठा है कि वे नियति को संघर्ष की चुनौती देते हुए कहते हैं-

मैं छोड़कर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार –
बांधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ,
सुन रही है तू?
मैं खड़ा तुमको यहां पुकारता हूँ।

3. अहंवादिता – अज्ञेय के अतिरिक्त भारती, सर्वेश्वरदयाल, मुक्तिबोध तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा के प्रयोगावादी काव्य में अहं को अभिव्यक्ति के विविध रूप मिलते हैं। धर्मवीर भारती अभिमन्यु के पहिये के प्रतीक द्वारा अपने व्यक्ति की गुरुता को प्रतिपादित करते हैं। यदा-कदा प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति सामाजिकता से भी जोड़ा है। ऐसे स्थलों पर उनकी अभिव्यक्तियाँ प्रभावपूर्ण है। व्यक्ति - स्वातन्त्रय इर्द-गिर्द ही इस सामाजिकता को स्थान मिला है। यह दीप अकेला स्नेह भरा कविता में अज्ञेय 'अहं' सीमित परिधि से उठकर व्यापक सन्दर्भ से जुड़ा है। दुष्यन्त कुमार ने भी 'अतृप्त साधों से की साध' को ऊँचा बताया है।

4. लघुमानव की प्रतिष्ठा – प्रयोगवादी कवियों ने लघुमानव की महत्ता पर बल दिया है। वे इसी से प्रतिष्ठा पर बल देते हैं। धर्मवीर भारती के शब्दों में-

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंकों मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले

यहाँ रथ का टूटा पहिया लघुमानव का प्रतीक है। इस काव्य में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान की अभिव्यक्ति की गई है। जो महत्ता की चरम सीमा स्पर्श करती है।

5. अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वर – डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी के अनुसार प्रयोगवादी कवियों में अनास्था के दो रूप मिलते हैं। एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति, जो वस्तुतः निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है। दूसरी, नितांत हताशापूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति है। कुण्ठा एक अनास्थामूलक वृत्ति है धर्मवीर भारती के शब्दों कुंठाजन्य असमर्थता देखिए-

अपनी कुण्ठाओं की
दीवारों में बंदी
मैं घुटता हूँ।

अज्ञेय के शब्दों में आस्था की कुछ सफल अभिव्यक्ति हुई है-

मैं आस्था हूँ
तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूँ

वस्तुतः प्रयोगवादी काव्यधारा के कवि नये मानवीय मूल्यों के अन्वेषण में लगे रहने के कारण आस्थावान हैं। वे धरती के प्रति नये विश्वास, नर में नारायण के निवास एव मानवमुक्ति के स्वरों को महत्व देते हैं। किंतु अतीत की प्रेरणा तथा भविष्य की उज्ज्वल आकाक्षाओं से विलीन होने के कारण अनास्थावादी बन गए हैं।

6. अतिबौद्धिकत्ता – प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी है। वह भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को महत्त्व देता है। वह अपने परिवेश के प्रति जागरूक है। उसने मध्यवर्गीय जनजीवन की समस्त गड़ंताय कुण्ठा पराजय, मानसिक संघर्ष आदि

को बौद्धिकता के साथ उद्घाटित किया है। छायावादी रंगीनी यहां अनुपलब्ध है। प्रयोगवादी काव्य में उन सभी विषयों को स्थान मिला है, जो आज तक उपेक्षित थे। इसी विषय व्यापकता और बौद्धिकता के कारण प्रयोगवादी काव्य में भदेस का चित्रण भी प्राप्त होता है। अज्ञेय की कविता में एक उदाहरण प्रस्तुत है -

मूत्र सिंचित मृत्ति के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नतग्रीव
धैर्य धन गवहा।

7. व्यंग्यात्मकता – प्रयोगवादी कवि ने गांव और शहर दोनों के चित्र उत्तारे हैं. और जहां कटु यथार्थ देखा वहीं व्यंग्य के माध्यम से विचार शब्दबद्ध कर दिए हैं। अज्ञेय की 'साँप' तथा श्रीमंत वर्मा की 'नगरहीन मन' कविता में व्यंग्यात्मक शैली का अत्यंत निखरा रूप देखा जा सकता है। अज्ञेय का शहरी सभ्यता पर व्यंग्य है-

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछें, उत्तर दोगे?
फिर कैसे सीखा डंसना,
विष कहाँ से पाया।

प्रयोगवादी कविता में सामाजिक एवं राजनैतिक विसंगतियों पर करारे व्यंग्य कसे गए हैं।

8. लोक सम्पृक्ति – नयी कविता की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी लोक-सम्पृक्ति है। नये कवि की चिन्तना पर विदेशी प्रभाव तो अवश्य है, फिर भी नये कवि न सहज लोकजीवन के समीप पहुंचने का प्रयास किया है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में ''नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया।''

9. निराशावादी स्वर – प्रयोगवादी काव्य में निराशावादी स्वर प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इस काव्यधारा के कवि आज के मनुष्य की विवशता और उस पर युद्धों की आशंका से निराशावादी बन गए हैं। उन्हें मानव का भविष्य अच्छा नहीं दिखाई देता है। श्री गिरिजाकुमार माथुर इसी निराशामयी भावना से अभिभूत होकर कह उठते हैं-

जब जगत् को चाहिए फुलवारियाँ,
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ।

10. वैज्ञानिक युगबोध तथा नये मूल्यों का चित्रण – प्रयोगवादी कवि वैज्ञानिक युगबोध तथा नये मूल्यों का चित्रण करना चाहते हैं किन्तु इस दिशा में उनकी सफलता संदिग्ध हैं। वे विज्ञान के केवल निषेधात्मक मूल्यों के वर्णन तक ही सीमित रहे हैं। उन्होंने मूल्यों के विघटन से उत्पन्न कुत्सित विकृतियों को ही अपने काव्य का विषय बनाया।

11. नयी भाषा की खोज – नयी कविता में नये सन्दर्भ आए और उनमें प्रयुक्त शब्दों में नया अर्थ भरा गया। कविता की भाषा गद्य के निकट आई, उसमें लघु वाक्यों का प्रयोग होने लगा। कवि ने. प्रयोगों की धुन में भूगोल, विज्ञान, मनोविश्लेषण शास्त्र आदि के शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में करने लगे। वे जान-बूझकर शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने लगे। भाषा को व्याकरण-सम्मत रूप का अनादर करने लगे। विलक्षणता और वैचित्र्य प्रदर्शन को प्रश्रेय देने लगे।

12. सुक्तक परम्परा में विश्वास – नयी कविता के निर्माता छन्द आदि के बंधन को स्वीकार न करके मुक्तक परम्परा में विश्वास करते हैं। उन्होंने लोक गीतों को भी अपनी कविता का आधार बनाया है। वे लय, गति आदि से विहीन कविता की रचना भी करते हैं, जिससे उनको कविता में गद्य की सी नीरसता आ जाती हैं वह प्रभावशून्य बन गई है और पाठकों के हृदय को द्रवित नहीं करती है।

13. नये–नये उपमानों का प्रयोग – प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में पुराने उपमान मैले पड़ गये हैं और नये भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। इसी से वे नये–नये उपमानों का अपनी कविता में प्रयोग करते हैं। यथा –'प्यार का बलब फ्यूज हो गया, मेरे सपने इस तरह टूट गये जैसे मुंजा हुआ है, वहां उसके सौन्दर्य का हास भी हुआ हैं नये कवियों ने वैचित्र्य–प्रदर्शन के निर्मित भी नये उपमानों का प्रयोग किया है। उससे उनकी कविता कोरी कारीगर बन गई है।

इस प्रकार प्रयोगवादी और नयी कविता के अपने गुण–दोष हैं। इस काव्यधारा ने हिन्दी कविता को एक उसी दिशा दी है। इसकी कृति बौद्धिकता और भाषा के व्यक्तिगत प्रयोगों ने कविता के गौरव को क्षतिग्रस्त भी किया है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. प्रयोगवाद का आरंभ कब से माना जाता है?

प्र.2. प्रयोगवाद का आरंभकर्ता किसे माना जाता है?

प्र.3. नवीन प्रयोग करना किस वाद की विशेषता है?

13.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कविता के जन्म के दो कारण माने गये है। एक सामाजिक और दूसरा साहित्यिक। मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के पाटों के भीतर कवि पिसता जा रहा था या इस प्रकार अनुभव महसूस कर रहा था। सामाजिक जीवन में आर्य गिरावट, परंपरा की जकड़ बंदी से छूटने की छटपटाहट, मूल्यों के नकार को उनकी संवेदनाओं ने ग्रहण किया।

13.5 कठिन शब्दावली

निशीथ - तमा, रात्रि

मिथ्या - असत्य, झुण

स्वर्णविहान - उषाकाल

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन 1943
2. अज्ञेय
3. प्रयोगवाद

13.7 संदर्भित पुस्तकें

1. हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्भव एवं विकास
2. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास

13.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1. प्रयोगवाद काव्य से आप क्या समझते है? स्पष्ट करें।

प्र. 2. प्रयोगवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3. प्रयोगवादी काव्य में अज्ञेय का स्थान निर्धारित कीजिए।

*****

इकाई – 14
प्रयोगवाद के प्रमुख कवि

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 प्रयोगवाद के प्रमुख कवि

- अज्ञेय
- मुक्तिबोध
- धर्मवीर भारती

स्वयं आकलन प्रश्न

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तकें

14.8 सात्रिक प्रश्न

14.1 भूमिका

इकाई तेरह में हमने प्रयोगवादी काव्य एवं प्रयोगवादी काव्य की विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई चौदह में हम प्रयोग के प्रमुख कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध एवं धर्मवीर भारती के जीवन परिचय तथा उनकी रचनाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इकाई चौदह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. प्रयोगवाद के प्रमुख कवि कौन-कौन है?
2. अज्ञेय को प्रयोगवाद का श्लाका पुरुष क्यों कहा जाता है?
3. मुक्तिबोध की साहित्यिक विशेषताएँ क्या है?
4. धर्मवीर भारती का प्रयोगवाद में क्या योगदान है?

14.3 प्रयोगवाद के प्रमुख कवि

काव्यजगत में नए-नए प्रयोग करने वाली वैयक्तिक, अतिबौद्धिक, यथार्थमयी, व्यंग्यात्मक कविता प्रयोगवादी कहलायी जिसमें विषय वस्तु से लेकर शिल्प, एक में नए नए प्रयोग मिलते हैं। तार सप्तक (1943) से आरंभ इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों में अज्ञेय मुक्तिबोध, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे आदि कवि आते हैं यहां कुछ का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

● **अज्ञेय (1911–1987 ई.) –** अज्ञेय छायावादोत्तर कविता के सर्वाधिक चर्चित कवि है। वे प्रयोगवाद के. प्रवर्तक तथा नई कविता के समर्थ कवि हैं। इनका पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन है। इनका जन्म देवरिया जिले के 'कमिया' नामक गांव में सन् 1911 में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर हुई। विश्वविद्यालयी शिक्षा इन्होंने मद्रास तथा लाहौर में प्राप्त की। इनका अधिकांश जीवन देशाटन में व्यतीत हुआ। अज्ञेय हिन्दी के प्रमुख कवि, उपन्यासकार, कहानीकार एवं यात्रावृत्त-लेखक के रूप में प्रसिद्व हैं। अज्ञेय की काव्य-रचनाएं हैं 'चिन्ता', 'इत्यलम', 'भग्नदूत', 'हरी'

घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभागय', 'आंगन के प्रार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागरमुद्रा', 'गहावृक्ष के नीचे', 'सदानीरा' आदि। शेखर : एक जीवनी (दो भाग), 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' श्इनके उपन्यास हैं। 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद' आदि निबन्ध-संग्रह हैं। 'एक बूंद सहसा उछली' तथा 'अरे यायावर रहेगा याद' इनके यात्रावृत हैं। इनके सम्पादित ग्रन्थों की संख्या भी पर्याप्त है, जिनमें चार सप्तकों का विशेष स्थान है। 'कितनी नावों में कितनी बार' पर अज्ञेय को ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अज्ञेय के काव्य-विकास को साधारणतया तीन भागों में बांटा जा सकता है (क) छायावाद से प्रभावित आरम्भिक काव्य (ख) प्रयोगवाद तथा नई कविता की रचनाएं तथा (ग) नवस्वच्छन्दतावादी काव्य। 'चिंता' और 'इत्यलम' को प्रथम वर्ग में रखा जा सकता है जिसमें प्रेम का विषय है। 'वंचना के दुर्ग', 'मिट्टी के ईसा' उनकी प्रयोगवादी कविता है जिसमें प्रयोगवादी सभी गुण हैं। हरी घास पर क्षण भर, 'बावरा अहेरी' उनकी नयी कविताएं कहलाती हैं। अत: अज्ञेय को काव्य में प्रेम सौन्दर्य, समाज, व्यक्ति, परंपरा, दर्शन, जीवन, रहस्य आदि सभी विषय की कविताएं मिलती है। वस्तुत: अज्ञेय ने हिंदी कविता को शिल्पगत आधुनिकता प्रदान की है।

● **मुक्ताबोध (1912-1964 ई.) –** मुक्तिबोध क्रा पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है। नई कविता को स्थिति मूल्य प्रदान करने वाले कवि मुक्तिबोध का जन्म श्योपुर (मध्यप्रदेश) में 1917 में हुआ। मुक्तिबोध के पिता माधव राम ग्वालियर रियासत के पुलिस विभाग में थे। पिता के व्यक्तित्व के प्रभाव-स्वरूप मुक्तिबोध में, ईमानदारी न्यायप्रियता और दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रतिफलन हुआ। सन् 1935 में जाति, कुल और सामाजिक आचारों से लोहा लेते हुए प्रेम-विवाह किया। इन्होने मुख्यत: अध्यापन कार्य किया। एक अरसे तक भागपुर से 'नया खून' साप्ताहिक का सम्पादन करने के बाद इन्होंने अध्यापन कार्य अपनाया और अंत तक 'दिग्विजय महाविद्यालय', राजनंद गांव (मध्य प्रदेश) में हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। इनकी मृत्यु 1964 में हुई।

इनकी कविताएं पहली बार अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' (1943 ई.) में छपीं। इनकी कविताओं के संग्रह 'चांद का मुंह टेढ़ा है (1964) तथा 'भूरि-भूरि खाक धूल' छपे हैं। इसके अलावा उनके दो कहानी संग्रह हैं। 'विपात्र' नामक एक उपन्यास और 'एक साहित्यिक की डायरी' उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं। मुक्तिबोध की आलोचनात्मक कृतियां भी है।

'कामायनी : एक पुनर्विचार', 'नई कविता का आत्मस्पर्धा तथा अन्य निबंध', 'नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'। इनकी सारी रचनाएं 'मुक्तिबोध रचनावली' के नाम से छ: खण्डों में प्रकाशित हुई हैं।

मुक्तिबोध का कवि व्यक्तित्व जटिल है। ज्ञान और संवेदना के संश्लिष्ट स्तर से युगीन प्रभावों को ग्रहण करके प्रौढ़ मानसिक प्रतिक्रियाओं के कारण उनकी कविताएं विशेष सशक्त हैं। मुक्तिबोध ने अधिकतर लम्बी नाटकीय कविताएं लिखी हैं जिनमें समसामयिक समाज, उनमें पलने वाले अंतर्द्वन्द्व और इन अंतर्द्वन्द्वों से उत्पन्न भय, संत्रास, आक्रोश, विद्रोह और दुर्दम्य संघर्ष भावना के विविध रूप चित्रित हैं।

मुक्तिबोध की कविताओं में सम्पूर्ण परिवेश के बीच अपने आपको खोजने और पाने को ही नहीं, सम्पूर्ण परिवेश के साथ अपने आपको बदलने की प्रक्रिया का चित्रण भी मिलता है। इस स्तर पर मुक्तिबोध की कविता आधुनिक जागरुक व्यक्ति के आत्मसंघर्ष की कविता है।

अपने कर्म के प्रति ईमानदार होने के कारण मुक्तिबोध ने अपनी संवेदना और ज्ञान के अनुसार एक विशिष्ट काव्य-शिल्प का निर्माण किया है। फैंटेसी का सार्थक उपयोग मुक्तिबोध ने अपनी संवेदना और ज्ञान के अनुसार एक विशिष्ट काव्य-शिल्प का निर्माण किया है। फैंटेसी का सार्थक उपयोग मुक्तिबोध की कविताओं में ही देखने को मिलता है।

मुक्तिबोध ने कविता को दृढ़ राजनीतिक आधार दिया और हिन्दी में पहली बार यह स्पष्ट किया कि सार्थक कविता की सर्जना गहरे अर्थों में राजनीतिक कवि ही कर सकता है।

● **धर्मवीर भारती (सन् 1926–1997)–** धर्मवीर भारती प्रयोगवाद और नई कविता के सक्षम कवि, उपन्यासकार तथा पत्रकार हैं। 'गुनाहों का देवता' तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' इनके उपन्यास हैं। इनकी कहानियां तथा निबन्ध इनके व्यक्तित्व एवं विचारों की अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। भारती 'धर्मयुग' के सम्पादक रहे। 'सिद्ध साहित्य' पर उनका शोधग्रंथ है। 'ठण्डा लोहा', 'सात गीत वर्ष', 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'सपना अभी भी', 'कुछ लम्बी कविताएं।' तथा 'आद्यन्त, भारती की काव्य रचनाएं हैं। 'दूसरा सप्तक' में भी इनकी कुछ कविताएं संकलित हैं। भारती की आरंभिक कविताओं की मूल प्रवृत्ति रुमानी है। प्रेम, सौन्दर्य, रूपासक्ति, काम–वासना आदि की उच्छल अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में 'बादलों की पाँत', 'इन फीरोज होठों पर', 'गुनाहों का दूसरा गीत', 'मुग्धा' आदि प्रेम के मांसल रूप को नये उपमानों और प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया गया है।

इसके अतिरिक्त भारती ने और निर्माण विषयक कविताएं भी लिखी है। 'निराला के प्रति', 'थके हुए कलाकार से, 'कविता की मौत', 'फूल, मोमबत्तियाँ और टूटे सपने' आदि कविताएं इस सृष्टि से सशक्त हैं।

'अन्धायुग' भारती का एक गीतिनाट्य है। इसमें महाभारत के उत्तरार्द्ध के को लेकर ने आधुनिक युग की परिस्थितियों, समस्याओं एवं मूल्यों की व्याख्या की है। इस प्रतीकवादी काव्य–रूपक में धृतराष्ट्र अंधत्ता का गांधारी जंडमोह की, कृष्ण कटक के, अश्वथामा बर्बरता का, युयुत्सु आत्मग्लानि का, संजय जीवन की व्यर्थता का और शहरी प्रजा के प्रतिरूप हैं। वर्तमान युग से सम्बन्धित 'अंधायुग' की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

युद्धोपरांत
यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियां मनोवृतियां
आत्माएं सब विकृत हैं

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. अज्ञेय का पूरा नाम क्या है?

प्र.2. 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के रचनाकार कौन है?

प्र.3. 'मुक्तिबोध - का जन्म वर्ष क्या है?

14.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि प्रयोग शब्द का सामान्य अर्थ है, नई दिशा में अन्वेषण का प्रयास। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर प्रयोग चलते रहते है। प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में उभरे और 1943 ई. के बाद की अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, धर्मवीर भारती आदि की कविताएँ प्रयोगवादी है। प्रयोगवाद के अगुआ कवि अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

14.5 कठिन शब्दावली

आह्वान - पुकारना

गबन - सरकारी पैसों का घोटाला

आलोचना - गुण–दोष निरूपक्ष

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सच्चिदानंद हीरानंद 'वात्सयायन', 'अज्ञेय'
2. मुक्तिबोध
3. सन् 1917 ई.

14.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
2. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत

14.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1. प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों पर एक आलेख लिखिए।

प्र.2. अज्ञेय की साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र.3. मुक्तिबोध की काव्यगत प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई – 15
नई कविता और उसकी विशेषताएँ

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 नयी कविता

15.3.1 नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ

- प्रणय भावना
- काम भावना
- अहम भावना
- यथार्थता
- बौद्धिकता
- निराशा
- नई नैतिकता
- व्यंग्यात्मकता
- नई भाषा

स्वयं आकलन प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

15.7 संदर्भित पुस्तकें

15.8 सात्रिक प्रश्न

15.1 भूमिका

इकाई चौदह में हमने प्रयोगवाद के प्रमुख कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध और धर्मवीर भारती का अध्ययन किया। इकाई पन्द्रह में हम नयी कविता का अर्थ, परिभाषा, नयी कविता के स्वरूप एवं नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इकाई पन्द्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे किं –

1. नयी कविता अर्थ क्या है?
2. नयी कविता की परिभाषाएँ क्या है?
3. नयी कविता का आरंभ कब से माना जाता है?
4. नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

15.3 नयी कविता

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में जो भावी क्रांति आई उसने अनेक काव्यान्दोलनों को जन्म दिया। विभिन्न परिस्थितियों, प्रवृतियों के परिणामस्वरूप नए नए भाव और विचार कविता के रूप में ढल कर सामने आए। सन् 1943 में तारसप्तक से

प्रयोगवादी काव्यधारा का जन्म हुआ लेकिन जल्दी ही 'नई कविता' काव्य संग्रह के आगमन से नई कवितां का आरंभ माना जाता है जिसका संपादन जगदीश गुप्त ने किया। वस्तुत: स्वतन्त्रता के बाद नयेपन की शुरूआत छायावादी कवियों द्वारा हो चुकी थी 'खुल गए छंद के बंध' कहकर कविता के नयेपन की ओर संकेत किया गया। अत: नई कविता को प्रौढ़ता की नींव छायावाद में ही पड़ गई थी।

कुछ विद्वान प्रयोगवादी कविता को ही नई कविता मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार ''प्रयोगवादी कविता में भावना है किंतु हर भावना के आगे एक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है यही बौद्धिकता है'', कितु नई कविता प्रयोगवाद की अगली, कड़ी है जिसने सभी प्रश्न चिह्नों को उतार फेंका। डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार 'नई कविता' उन प्रमुख विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है।

15.3.1 नयी कविता की प्रमुख विशेषताएं

अत: नई कविता सभी काव्यधाराओं से अलग अपने अपने भायबोध, नए विचारों, नए शिल्प और नई जमीन को लेकर उत्पन्न हुई है। इस कविता की निम्नलिखित विशेषताए हैं

- **प्रणय भावना –** नई कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में हुई है। अज्ञेय ने प्रेम को मानव की नैसर्गिक भूख माना है। अज्ञेय का स्वगयुगल इसी प्रेम की बात करता है। इनके प्रेम की परिणति समर्पण है।
- **काम भावना –** नई कविता में प्रेम को काम से सदैव अलग नहीं माना गया है, यही कारण है कि कवि मन के रिश्ते के साथ-साथ तन के रिश्ते की भी बात करता है। प्रेम के बीच जिस आकर्षण और सगर्पण की बात कही जाती है, वह दो हृदयों का ही आपसी मिलन नहीं है, अपितु तन से तन का मिलन भी है। नर-नारी के बीच जो सहज आकर्षण सूत्र वर्तमान रहते हैं वे कामरहित प्रेम की कल्पना की झुठलाते प्रतीत होते हैं-

  आज मुख्य मेहमान तुम
  रात के 'फ्लोर शो'श में
  एक बार, बस एक बार
  अपने तन की छाप छोड़ जाओ
  मुझ पर

  भोगासक्ति इतनी बढ़ गई है कि शरीर के उभार और नरम चित्रण को दिखाते हुए उद्यम वासना-तुष्टि से तृष्टि का अनुभव करने वाली कविताओं की कमी नहीं है। भारती की 'कनुप्रिया' तथा 'ठण्डा लोहा' की कतिपय कविताओं में इसी मासल प्रेम को देखा जा सकता है।
- **अहम् भावना –** प्रेम को जब विस्तार मिल जाता है तो वह प्रेम और प्रेमिका दोनों के हृदय को कोमल भावनाओं से भर देता हैं। इसी प्रेम के क्षेत्र में अहं का शासन नहीं चलता। नयी कविता में अज्ञेय, सर्वेश्वर और कीर्ति चौध री आदि की अनेक कविताओं में प्रेम के समक्ष का विसर्जन हो जाता है। प्रेम की तीव्र प्रवहमान धारा अहं के रोड़े को अपने साथ बहा ले जाती है। नये कवियों में अहं का प्रकाशन चाहे भले ही व्यापक धरातल पर हुआ हो, किंतु प्रेम की दुनिया में वह अपनी खिचड़ी नहीं पा सका है। यह स्वाभाविक भी है। सर्वेश्वरदयाल ने बौने प्यार के कर में अहं की जयमाला डालकर लिखा है-

  अहं से मेरे बड़ी हो तुम।
  क्योंकि मेरी शक्तियों की
  हर पराजय जीत की
  अंतिम कडी हो तुम।

- **यथार्थता –** 'नई कविता' का यथार्थ जीवन को उसके समग्र रूप में देखने में निहित है। मनुष्य जैसा हैं, सुख-दु:ख, जय पराजय, हांस विलास, सृजन और संघर्ष आदि समस्त क्रिया-व्यापारों में उसकी जो मूर्ति उभरती है, नई कविता उस सम्पूर्ण सम्भावित मानव-मूर्ति को चित्रित करना चाहती है।

  नई कविता का कवि जीवन को इसी व्यापक धरातल पर ग्रहण करता है और भोगे गए क्षणों की यथार्थ अनुभूति के आधार पर उसके खंड-रूपों की सार्थक अभिव्यक्ति करता है। वह जीवन की समस्याओं से कतरा कर पलायन नहीं करता, बल्कि सारी विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच रह कर उन्हें भोगता है।
- **विवेक का निकष–** नया भावबोध अंध-श्रद्धा का पोषक नहीं है। वह अंधविश्वास की जगह तर्क बुद्धि से काम लेता है। उसके पास विवेक का निकष है, जिस पर हर वस्तु के सत्य और असत्य की परीक्षा लेता है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने इस संबंध में लिखा है ''नया भावबोध सिद्ध-सतय जैसी वस्तु नहीं मानता। उसकी प्रकृति है प्रत्येक सत्य को विवेक से देखना, उसके परिप्रेक्ष्य को प्रयोग के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुंचाना। इस प्रक्रिया में थोड़ा भटकाव संभव हो सकता है, थोड़े बहुत बहकाव की भी संभावना हो सकती है, किंतु यह प्रक्रिया ठहराव की मौत से कहीं अधिक जीवन्त और प्रेरणावान है।
- **बौद्धिकता –** विवेक को प्रमुख मानने के कारण आज की कविता में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता है। आदमी का जीवन दिनोंदिन चिंतन-प्रधान होता जा रहा है, क्योंकि भावना से वह अपनी समस्याओं को नहीं सुलझा पाता। हृदय से अधिक उसे मस्तिष्क से काम लेना पड़ता है। डॉ. कुमार विमल ने लिखा है- ''नई कविता में चितन को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। आज का कवि भावना और कल्पना से अधिक चिन्तन का विश्वासी है।''
- **निराशा–** नई कविता में वर्तमान युग की विषमता के परिणामस्वरूप उत्पन्न निराशा और दुख को ही साक्षात् किया है। वस्तुत: आधुनिक जीवन में गिरते जीवन मूल्यों, घटते आदर्शो, टूटते संबंधों, भ्रष्टाचार, अविश्वास, स्वार्थ, धोखे आदि के कारण जीवन निराशमयी बन गया है। यह कविता इसी निराशा को व्यक्त करती है। आज के कवि को नैतिक और सामाजिक वर्जनाओं का सामना करना पड़ रहा है। फलत: निराशा हाथ लगती है, यही उसकी अभिव्यक्ति बन जाती है।
- **नई नैतिकता –** आधुनिकता ने एक नई नैतिकता को जन्म दिया है, जिसको तर्क पूर्ण और बुद्धि ग्राह्य बनाने के लिए उसने विराट दर्शन खड़ा कर लिया है। इस नई नैतिकता ने हमारे तरुण वर्ग, साहित्य और कला को प्रभावित किया है। जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को रोकने के लिए आधुनिक सभ्य समाज ने जिस वन्ध्याकरण, गर्भ निरोधक साधन, गर्भपात और विलम्बि विवाह का सहारा लेना प्रारंभ किया है, उसने सांस्कृतिक दृष्टि से हमारे समक्ष एक नई नैतिकता का प्रश्न ठेठा दिया है। वात्सल्य का भावाकुल स्वरूप दबने लगा है, आधुनिकाओं में मातृत्व वरण की अपेक्षा अप्सरा धर्म के प्रति विशेष आकर्षण जगने लगा हैं। आचरण की पवित्रता से अधिक चमड़े के सौंदर्य को महत्त्व मिलने लगा है।
- **व्यंग्यात्मकता –** नई कविता ने यथार्थ को महसूस ही नहीं भोगा भी है। अत: वे साामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विसंगतियों के प्रति व्यंग्य के माध्यम से अपना आक्रोश निकालते हैं। उदाहरणार्थ -

  पहले लोग सठिया जाते थे
  अब कुर्सिया जाते हैं
  दोस्त मेरे !
  भारत एक कृषि प्रधान नहीं
  कुर्सी प्रधान देश है।

  भारतभूषण, धूमिल जैसे कवियों ने बहुत ही तीखे और सधे व्यंग्य प्रस्तुत किए हैं।

- **नई भाषा –** नई कविता में नूतन भाषा प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। क्योंकि पुरानी भाषा में थकान आ जाने के कारण वह नये भाव बोध को पकड़ नहीं पाती है। यहीं बिंबों, प्रतीकों, उपमानों आदि का भी पुराना, परंपरागत, चोला छोड़ यह कविता नवीनता का आग्रह करती है। वस्तुत: नए विचारों को अभिव्यक्ति करने के लिए नए भाषा शिल्प की आवश्यकता थी जिसे नए कवियों ने अपनाया है।

अत: नई कविता आज की, आज की समस्याओं को, यथार्थ को उजागर करने वाली सशक्त, जीवंत और नए भावबोध की कविता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 नयी कविता का आरंभ कब से माना जाता है?

प्र. 2 'नये शिल्प' किस कवि की विशेषता है?

प्र. 3 'नयी कविता' के जनक किसे माना जाता है?

15.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि नयी कविता ने मनुष्य और उसके संघर्ष को यथार्थवादी रूप में प्रतिष्ठित किया है। नयी कविता के कवियों का मानना था कि हमारी कविताएँ अनास्थावादी लगती है जो आज के समाज की सच्चाई है, इनके अनुसार विचारधाराओं, परंपराओं, रूढ़ियों आदि पर झुठी अवस्था को स्वीकार नहीं करती।

15.5 कठिन शब्दावली

यथार्थ - जैसा होना

पृथ्वी - धरती, जमीन

साधना - सिद्ध होना

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1953
2. नयी कविता
3. अज्ञेय

15.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां ।
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य का संवेदनात्मक इतिहास ।

15.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1. नये कविता से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिए।

प्र.2. नये कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र.3. नयी कविता के प्रमुख कवि कौन–कौन से है? विस्तारपूर्वक लिखिए।

*****

इकाई – 16
नवगीत और उसकी विशेषताएँ

संरचना

16.1 भूमिका

16.2 उद्देश्य

16.3 नवगीत

16.3.1 नवगीत की विशेषताएँ

16.3.2 समकालीन कविता

स्वयं आकलन प्रश्न

16.4 सारांश

16.5 शब्दार्थ

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

16.7 संदर्भित पुस्तकें

16.8 सात्रिक प्रश्न

16.1 भूमिका

इकाई पन्द्रह में हमने नयी कविता एवं नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं का गहन अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम नवगीत, नवगीत की विशेषताएँ तथा समकालीन कविता का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इकाई पन्द्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. नवगीत क्या है?
2. नवगीत का आरंभ कब से माना जाता है?
3. नवगीत की विशेषताएँ क्या है?
4. समकालीन कविता क्या है?

16.3 नवगीत

स्वातन्त्र्योत्तर काव्यजगत पर बौद्धिकता को बरबस हावी करने की रौ में गीतों को 'रोमानी विधा' उपेक्षा करने की चेष्टा की गई। 'कविता' के मुकाबले 'गीत' को दूसरे दर्जे का लेखन भीषित किया गया लेकिन यह मात्र छिछली मानसिकता ही थी।

वस्तुत: गति और लय से युक्त स्वच्छंद भावा को अभिव्यक्ति गीत में होती है जिससे आनंद की प्राप्ति होती है। छायावादोत्तर गीतों में व्यक्तिगत सुख–दुख के अनुभव केन्द्रित थे। बच्चन, अंचल, नीरज ने गीतों को समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उथल–पुथल से परे सहज बनाए रखा। सही मायने में कवि सम्मेलनों में पहुंचकर गीत विकृत हो गए। ऐसी स्थिति में 'गीत' के नएपन की मांग अस्वाभाविक न थी। अत: राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'गीतागिनी' (1958) में पहले बार 'नवगीत' की विशद चर्चा हुई। रजिन्द्र प्रसाद ही 'नवगीत' के नामकरण और आंदोलन के हकदार हैं।

राजेंद्र प्रसाद सिंह ने 'संगीत' के पांच स्तरीय तत्व माने हैं– जीवनदर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तित्व बोध, प्रीततत्त्व और परिसंचालन।

कुछ विद्वान नई कविता को नवगीत से जोड़ने का प्रयास करने लगे, लेकिन दोनों अलग अलग अस्तित्व रखते हैं। राजेन्द्र प्रसाद सिंह के अनुसार 'नवगीत' नई कविता के प्रगीत का पूरक है। रामदरश मिश्र के अनुसार नई कविता अधिक बौद्धिक है जबकि गीत हृदय का सहारा लिए रहता है। शिल्प की दृष्टि से भी नई कविता और नवगीत के अंतर को समझा जा सकता है क्योंकि नई कविता का शिल्प 'गीत' में खप नहीं सकता है क्योंकि 'गीत' की सबसे पहली विशेषता 'गेयता' आहत होती है।

नवगीत एक आन्दोलन के रूप में उभरा है। सन् 1960 के आसपास नवगीत की चर्चा ने जोर पकड़ा। निराला को नवगीत के प्रगेक्ता कहा गया क्योंकि 1936 में उनके कविता संग्रह 'अनामिका' तक अनेक नवगीत हैं। बाद में त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर ने नवगीत को आगे बढ़ाया आगे चलकर शंभूनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, वीरेन्द्र मिश्र आगे आए। नवगीत की चौथी पीढ़ी में मणिमधुकर, छविनाथ मिश्र, उमाकांत मालकीय, रमेश रंजक, उमाशंकर तिवारी, कैलाश गौतम है। पांचवी पीढ़ी में नचिकेता, गोपालदास नीरज, अनूप अशेष, अशोक शर्मा, रवि खण्डेलवाल आदि उल्लेखनीय हैं। नवगीतों की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

16.3.1 नवगीत की विशेषताएं

1. व्यापक और गंभीर मनोभूमि – गीतों को सदैव रोमानियत से जोड़ कर देखा जाता था अतः 1. नवगीतकारों ने इस रोमानी धरातल से हटाकर नवगीत के लिए व्यापक और गंभीर मनोभूमि खोजी। नवगीत में मूल्य विघटन, संबंधहीनता, अजनबीपन और राजनीतिक परिवर्तन को उभारा गया। उदाहरणार्थ चंडसेन विराट के शब्द देखिए–

जान पहचान सिर्फ नोटों कीं
कि सहानुभूति सिर्फ होठों की
दोस्त यह शहर है या अजायब घर
भीड़ है अजनबी मुखौटों की

2. लोक जीवन के अनुभव – नवगीतों में लोकजीवन की ही विषय वस्तु को अनुभव रूप में ग्रहण की जाती है। कुछ गीत फिल्मों और फैशन के लिखे गए हैं लेकिन लोकजीवन की पूंजी ही नवगीतों में उभरी है। जैसे कैलाश गौतम ने एक गीत में भाभी द्वारा देवर को लिखे पत्र क्री सहज भंगिमा द्रष्टव्य है, जिसमें न केवल घरेलू बातों को बहुत भोलेपन से कहा गया है, अपितु समकालीन यथार्थ के कतिपय कटु संदर्भो पर तीखी चोट की है–

ईंट चढ़ी है नाली की,
जब से चौबारे देवर जी.

3. प्रकृति संबंधी दृष्टिकोण – नवगीतकारों ने प्रकृति को बहुत पास से देखा है वे प्रकृति पर अपनी काम कुंठाओं के आरोपण के विरोधी हैं। वे तो प्रकृति के पल–पल परिवर्तित रूप को ही सहज, जीवंत, स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने के पक्षधर हैं। उदाहरणार्थ महेश्वर तिवारी के शब्द देखिए –

फागुन आकर दे गया उलटे सीधे काम
गुमसुम बैठे रेत पर लिखना अपने नाम

कवियों के प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोपण अवश्य किया है। उदाहरणार्थ रवीन्द्र भ्रमर द्वारा कृत्त हवा का मानवीकरण देखिए –

हवा से कहा, बहना ! धीरे यह
मेरी मंजरियां अनमोल
झर न जाएं

4. रूढ़ि विरोध – सामाजिक विसंगतियों पर नवगीतकार की कड़ी नजर रही है। गीतों की लय में, प्रवाह में वे शब्दों के साथ भावों और विचारों में भी किसी रूढ़ि के समर्थन का विरोध करते दिखते हैं–

मातृद्रोही, पितृद्रोही
रूढ़ियों भंजक कहा जाना
हमें स्वीकार, हमें स्वीकार

5. जनभाषा – रमेश कुंतल मेघ के अनुसार नवगीत में लोकसंस्कृति और जनभाषा ही मुख्य आधार है। अर्थात नवगीत में लोकसंस्कृति के पक्ष का ही प्रस्तुतीकरण होता है तथा उसे अभिव्यक्त करने वाली भाषा भी जनभाषा होना चाहिए। यही कारण है कि 'अँजोरे पाख' 'पछुआ', 'टिकोरे', 'तेसू', 'हरिभाल', 'बाखर', 'मधुवाहा, 'सेंदर', 'सपनवाँ, 'महलिया' आदि अनेक शब्द सीधे जनजीवन से लिए हैं। अनूप अशेष की कविता में वह गुण देखिए –

पगुराते बैल, पुती दोहरी, हंसती मुडेर
देखने कहां जाएं
खेतों की गंध हवा मोड़ गयी।

6. नव बिंब एवं नव उपमान – नवगीतों में अभिव्यंजना को भी नवीन एवं सशक्त बनाने के लिए नए–नए बिम्बो, नए–नए उपमानों को अपनाया है। ये बिंब और उपमान भी उन्होंने लोक जीवन से लिए है तभी छविनाथ मिश्र की याद 'रोज दूध फलों और पूतों नहाकर आई सुबह सी' लगती है। 'उमाकांत मालवीय को किसी की हंसी 'दूध की धोयी बिलोयीसी' लगती है। रवीन्द्र भ्रमर का मन शकिसी मासूम बच्चे सा अकेला भटकता है। कुंतल कुमार जैन 'रेल सीटी की तरह' गूंजता है। रमेश रंजक का मौसम 'एक भीगे हुए साबुन सा' खिसक जाता है।

इस प्रकार नवगीत से थोड़े से जीवनकाल में जो उपलब्धियाँ अर्जित की वे महत्त्वपूर्ण है। लेकिन भेड़चाल की प्रवृत्ति के कारण लोकजीवन के शब्दों को लेने का फैशन चल पड़ा है। नागरिक गीतकार भी जबदस्ती गीत को ग्राम बंधी बनाने में लगे हुए है जो ऊपर से गुजर जाते हैं, मन को छू नहीं पाते। इनके बावजूद नवगीत आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए है।

16.3.2 समकालीन कविता

नयी कविता के अनेक काव्यान्दोलनों में समकालीन कविता भी नया काव्यान्दोलन है। साठोत्तरी, कविता के साथ इसका नाम लिया जाता है। समकालीन कविता वैसे नयी कविता का ही आगे का विकसित रूप है। इसकी शिल्पगत नवीनता इसे कविताओं से अलग रूप में रूपांचित कर देते हैं। नये प्रतिमान, नये शब्द, नये भाव बोध समकालिन कविता में विशेष रूप से उभरे है। समकालीन कविता की सही पहचान बनाने वाले कवि धूमिल है। धूमिल ने 'संसद से सड़क तक' की कविताओं के माध्यम से वर्तमान परिवेश की संघर्ष भावना, तड़प, वेदना, झुंझलाहट और दर्द के देश को काल के प्रवाह में देखा है और व्यक्त किया है। समकालिन कविता के समीक्षकों ने इसका आधार जीवन की विसंगतिपूर्ण यथार्थ स्थिति के अंकन को माना है। समकालिन कविता के कवियों में धूमिल को शब्दों का जादूगर कहा गया है। इस आन्दोलन की कविता के अन्य प्रसिद्ध कवि ये है– राजकमल चौधरी, बलदेव पशी, जगदीश चतुर्वेदी, मुक्तिबोध, लीलाधर जगूडी, श्याम परमार, अशोक वाजपेयी, राजीव सक्सेना आदि है। डॉ. उपाध्याय ने 'समकालीन कविता की भूमिका' में ऐसे और अनेक समकालीन कवियों का उल्लेख किया है। समकालिन कविता में कथ्य का यथार्थ, सपाट बयानी, परिवेशगत धरातल, नवीन शिल्प प्रयोग जैसी अनेक विशेषताएं इंगित की है। आज के युग के मानव विद्रुपता और विवशता को बड़ी व्यंग्यभरी वाणी में व्यक्त करने वाले कवि धूमिल की कविता का एक उदाहरण इस संदर्भ द्रष्टव्य है–

पेट में धंसे छुरे के साथ भागती है अलारक्खी
सस्ते गलने की दूका की बाहरी

दीवार से टकराती है।

उसकी खून भरी मुट्ठी में भिंचा हुआ,

राशन कार्ड, हरित क्रांति के विरूद्ध।

उसकी टांगों में आयत है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने जिंदगी के युगीन विदूषियों पर व्यंग्य करते हुए इस प्रकार लिखा -

होकर सुजर/समाचार पत्र की तरह/

फेंक गया सुबह को/ मकान मकान के आगे/

धूप की चुस्की लेता हुआ/हर दरवाजा सोचता है।

एक भूकंप। एक युद्ध। एक बाढ़।

एक ट्रेन दुर्घटना/हत्याएँ और आत्महत्याएँ

वस्तुत: आज की समस्याओं, विदूषताओं और यथार्थ को व्यक्त करने वाली व्यंग्यपूर्ण कविता समकालीन कविता है

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. नवगीत गीत का आरंभ कब से माना जाता है?

प्र.2. शमशेर बहादुर सिंह किस सप्तक के कवि है?

प्र.3. युगधारा के लेखक कौन है?

16.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि नवगीत के कथ्य में समय सापेक्षता है। वह अपने समय की हर चुनौती को स्वीकार करता है। गीत की आत्मा व्यक्ति केन्द्रित है, जबकि नवगीत की आत्मा समग्रता में है। भावा के स्तर पर नवगीत छायावादी शब्दों से परहेज करता दिखाई देता है।

16.5 कठिन शब्दावली

प्रगति - आगे की ओर बढ़ना

गंभीर - गहरा

मिथ्या - कृत्रिम

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1960 ई.
2. द्वितीय सप्तक
3. नागार्जुन

16.7 संदर्भित पुस्तकें

1. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास
2. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

16.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1. नवगीत परम्परा एवं परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।

प्र.2. समकालीन काल की विशेषताएं बताइएं।

प्र.3. नयी कविता का काव्य सौष्ठव स्पष्ट करें।

*****

इकाई – 17
हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास

संरचना

17.1 भूमिका

17.2 उद्देश्य

17.3 हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास

- प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास
- प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास
- प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

स्वय आकलन प्रश्न

17.4 सारांश

17.5 शब्दार्थ

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

17.7 संदर्भित पुस्तकें

17.8 सात्रिक प्रश्न

17.1 भूमिका

इकाई सोलह में हमने नवगीत, नवगीत की विशेषताएं और समकालीन कविता का गहन अध्ययन किया है। इकाई प्रस्तुत में हम हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास, प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास, प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास तथा प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इकाई सत्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास कब हुआ?
2. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास की विशेषताएं क्या है?
3. प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास कौन-कौन से है?
4. प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास की विशेषताएं क्या हैं?

17.3 हिंदी उपन्यास का उद्भव एवं विकास

स्वतन्त्रता के बाद गद्य का जन्म हुआ। इस गद्य की एक सशक्त विधा उभरकर सामने आई उपन्यास। उपन्यास गद्य का महाकाव्य है। इस विधा में मानव जीवन की तथा उसके परिवेश और दृष्टिकोण की विस्तृत यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है। हिंदी साहित्य में उपन्यास के उद्भव-विकास को समझने के लिए उसकी यात्रा को तीन भागों में विभाजित करना अनिवार्य है जिसके लिए उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद को युग विभाजन के लिए मील के पत्थर रूप में रखा जाना अनिवार्य हैं। इस आधार पर उपन्यास का विकास क्रम प्रस्तुत हैं।

● प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास –

प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों की कालावधि सन् 1877 से 1918 तक मानी गई है क्योंकि 1877 में श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा एक सामाजिक उपन्यास लिखा गया। 'भाग्यवती' यह हिंदी का पहला उपन्यास है। सन् 1882 में लाल श्रीनिवास दास द्वारा 'परीक्षा गुरु' लिखा जिसे कुछ लोगों ने इसे हिंदी का प्रथन उपन्यास माना लेकिन यह अंग्रेजी की तर्ज पर लिखा उपन्यास

है और भाग्यवती के बाद लिखा गया है। भारतेंदुयुगीन सामाजिक उपन्यासों के क्रम में इनके बाद बालकृष्ण भट्टकृत रहस्यकथा, नूतन ब्रह्मचारी सौ अजान एक सुजान। राधा कृष्णदासकृत निस्सहाय हिंदू। ठाकुर जगमोहन सिंहकृत स्वप्न लज्जाराम शर्माकृत धूर्त रसिक लाल, आदर्श दम्पत्ति, आदर्श हिंदू, बिगड़े का सुधार। किशोरी लाल गोस्वामीकृत चपला व नव्य समाज, अंगूठी का नगीना, राजकुमारी प्रेममयी मुख्य है। द्विवेदीयुगीन उपन्यासकारों में अयोध्या सिंह उपाध्यायकृत 'ठेठ हिंदी का ठाठ', 'अधखिला फूल'। ब्रजनंदन सहायकृत सौन्दर्योपासक राधाकांत जैसे सामाजिक उपन्यास लिखे गए।

प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासकारो में भी सर्वप्रथम किशोरीलाल गोस्वामी का नाम आता है जिन्होंने लंबगलता, सुल्ताना रजिया बेगम, काननकुसुम, हृदयहारिणी, मल्लिका देवी, लखनऊ की कब्र उपन्यास लिखे। इसी क्रम में जयराम दास गुप्तकृत कश्मीर पतन, गंगाप्रसादकृत नूरजहाँ मुख्य हैं।

तिलस्मी – ऐय्यारी के उपन्यासों के सृजन में बाबू देवकीनंदन खत्री का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है जिन्होने चन्द्रकांता, चंद्रकाता संतति, नरेन्द्र मोहिनी, वीरेन्द्र वीर, कुसुमकुमारी, काजर की कोठरी, अनूठी बेगम, भूतनाथ आदि उपन्यास लिखे। इसी क्रम में हरेकृष्ण जौहरकृत कुसुमलता, मयंक मोहिनी, भयानक खून भी आते हैं।

जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी का नाम मुख्य है जिन्होंने 150 उपन्यास लिखे जिनमें मेम की लाश, खूनी का भेद, काशी की घटना, नये बाबू, बड़ा भाई, गुप्तचर, सरकटी लाश, डबल जासूस, जासूस की भूल, जासूस की जासूसी, खूनी कौन मुख्य है। इन्होंने 'जासूस' नामक पत्रिका भी निकाली।

प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में उक्त प्रकार के मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त अनूदित उपन्यास भी मिलते हैं। विभिन्न भाषाओं के उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया गया जैसे बंग विच्छेद, दुर्गेश नंदिनी, चितौड़ चातकी आदि।

● प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास –

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद क्रांति के अग्रदूत के रूप में हिंदी उपन्यास क्षेत्र में अवतरित हुए उन्होंने मनोरंजनपूर्ण, तिलस्मी ऐय्यारी आदि के उपन्यासों का वास्तविकता से परिचय कराया। वस्तुत: उन्होंने उपन्यास को यथार्थ की भूमि भर उतारा और समसामयिक भारतीय जीवन और उससे जुड़े लोगों और उनकी समस्याओं को उतारा, जिसमें कृषक को अपने उपन्यासों की मूल धुरी बनाया।

प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'प्रेमा' सन् 1907 में सामने आया इसके बाद रूठी रानी, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, वरदान, निर्मला, गबन, कर्मभूमि और गोदान (1935) लिखा 'मंगलसूत्र' इनका अंतिम अधूरा उपन्यास है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में पहली बार जन सामान्य को वाणी मली। इनके उपन्यास भारतीय राष्ट्रीय आदोलनों के सटीक भाष्य हैं। इन्होंने आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचंद मानवतावाद को प्रभावित थे। उनकी गांधीवादी जीवन दृष्टि से पीछे भी मानवतावाद की ही प्रेरणा है। भाषा–शिल्प की दृष्टि से श्री प्रेमचंद ने उपन्यास को एक विशिष्ट स्तर प्रदान किया।

इसी युग में विश्वम्भरनाथ कौशिक कृत माँ, भिखारिणी। शिवपूजन सहायकृत देहाती दुनिया। राधिक रमण सिंहकृत राम–रहीम, पुरुष और नारी, संस्कार, टूटा तारा, सूरदास, चुंबन और चांटा। सियारामशरण गुप्तकृत गोद, अंतिम आकांक्षा। जयशंकर प्रसादकृत कंकाल, तितली, इरावती (अधूरा)। गोविंद बल्लभ पंतकृत अमिताभ, एकसूत्र, मुक्ति के बंधन, तारों के सपने आदि मुख्य उपन्यास है।

● प्रेमचंद्रोत्तर हिंदी उपन्यास –

स्वातन्त्र्योत्तर युग को प्रेमचन्दोत्तर युग कह सकते हैं। इस युग में उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, घोर नग्न यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद, प्रतीकवाद, साम्यवाद, आंचलिकता आदि की प्रधानता होने से विभिन्न वादों, विषयों और क्षेत्रों से संबंधित उपन्यास सामने आए यथार्थवादी उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत हृदय की परख, हृदय की प्यास, अगर अभिलाषा, आत्मदाह व्यभिचार, अपराजिता, नरमेघ, पांडेय बेचन शर्मा उग्रकृत दिल्ली का दलाल, चाकलेट, चंद हसीनों के खुतूत, बंधुआ की बेटी शराबी, घंटा, कठी में कोयला, सरकार तुम्हारी आखों में, फागुन के चार दिन।

ऋषभचरण जैनकृत वेश्या मंच दिल्ली का कलंक, दिल्ली का व्यभिचार, मास्टर साहब, गंदा, सत्याग्रह, चाँदनी रात, हर हाइनेस, मयखाना। उपेन्द्रनाथ अश्ककृत गर्म राख मुख्य है।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों के सृजन में जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय का नाम मुख्य है। जैनेन्द्रकृत परख, सुखदा, कल्याणी, सुनीता, विवर्त, त्यागपत्र, बहुमत, मुक्ति, मुक्तिबोध मुख्य उपन्यास हैं। इलाचंद जोशीकृत लज्जा, घृणामयी, संयासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया निर्वासित, मुक्तिपथ जिप्सी, सुबह के भूले जहाज का पंछी आदि मुख्य उपन्यास है। अज्ञेयकृत्त शेखर एक जीवनी, अपने-अपने अजनबी देवराजकृत पथ की खोज, बाहर-भीतर, रोड़े और पत्थर, अजय की डायरी। धर्मवीर भारतीकृत गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा। नरेश मेहताकृत डूबते मस्तूल। निर्मल वर्माकृत वेदिन। सर्वेश्वर दयाल सक्सेनाकृत सोया हुआ जला प्रभाकर माचवे कृत द्वारा आदि मुख्य है।

प्रगतिवादी उपन्यासों में यशपालकृत देशद्रोही, दादा कामरेड, दिव्या, अमिता, अप्सरा का शाप, झूठा, सच, बाहर घंटे, मेरी तेरी उसकी बात मुख्य उपन्यास है। रामेश्वर शुक्ल अंचलकृत चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का, नागार्जुन कृत रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरूण के बेटे, हीरक जयन्ती, उग्रतारा रांधेय राघव कृत घरौंदे, विषाद मठ, सीधा सारा रास्ता, बोलते खण्डहर, कब तक पुकारूँ, महायात्रा, हुजूर, प्रोफेसर, आखिरी आवाज आदि। भैरवप्रसाद गुप्तकृत गंगा मैया, सत्ती मैया का चौरा, अंतिम अध्याय आदि अमृतरायकृत हाथी के दांत, नागफनी का देश । राजेन्द्र यादव 'अमृतरायकृत उखड़े हुए लोग, सारा आकाश मन्नु भंडारी कृत एक इंच मुस्कान, शह और मात आदि मुख्य उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासों में वृंदावन लाल वर्मा का अप्रतिम स्थान उन्होंने झांसी की रानी, विराटा की पद्मनी अमरबेल, आम्रपाली, मुसाहिबजू, मृगनयनी कचनार, गढ़ कुण्डार आदि उपन्यास लिखे। चतुरसेन शास्त्रीकृत वैशाली की नगरवधू, वयं रक्षायः, नरमेघ, सोमनाथ। सांकृतयायनकृत सिंह सेनापति, मधुर स्वप्न, दिवोदास। रांधेय राघवकृत मुर्दो का टीला, प्रतिदान, चीवर यशपालकृत दिव्या। हजारी प्रसाद द्विवेदीकृत बाणभट्ट की आत्मकथा, चारूचंद्र लेख, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा आदि मुख्य उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासों में फणीश्वर नाथ रेणुकृत मैला आंचल, परती परिकथा। नागार्जुनकृत बलचनमा। देवेंद्र सत्यार्थी रथ के पहिये, बह्मपुत्र। रामदरश मिश्रकृत पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ। राजेन्द्र अवस्थीकृत सूरज किरन की छांव। शैलेश भटियानीकृत डौलदार शिवप्रसाद सिंहकृत अलग अलग वैतरणी। राही मासूम रजाकृत आधा गांव आदि मुख्य उपन्यास हैं।

आज के समकालीन उपन्याकारों में कमलेश्वर (तीसरा आदमी, लौटे हुए मुसाफिर), लक्ष्मी नारायण लाल (अपना अपना. राक्षस, प्रेम एक अपवित्र नदी), दुष्यंत कुमार (छोटे छोटे सवाल), श्रीलाल शुक्ल (रागदरबारी, विसामपुर का संत), उषा प्रियंवदा (पचपन खंभे लाल दीवार, रुकोगी नहीं राधिका), मन्नु भंडारी (महाभोग, आपका बंटी), बंदी उज्जमा (एक चूहे की मौत) भीष्म साहनी (तमस) लक्ष्मीकांत वर्मा (खाली कुर्सी की आत्मा, टेराकोटा) मनमोहन सहगल (किसने दोस्त कितने दुश्मन) मनोहरश्याम जोशी (कुरु कुल स्वाहा) गिरिराज किशोर, मार्कंडेय, राजगुरु, शशिभूषण सिंहल आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1 भाग्यवती उपन्यास के लेखक कौन है?

प्र. 2. परीक्षा गुरू उपन्यास के लेखक कौन है?

प्र. 3 हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास कौन सा है?

17.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास का आरंभ अंग्रेजी तथा बंगला साहित्य के आधार पर बताया जाता है। हिन्दी प्रारंभिक उपन्यास इन भाषाओं के अनुवाद मात्र है। हिन्दी के मौलिक उपन्यास भारतेन्दु युग की देन है। हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है। हिन्दी उपन्यासों का प्रारंभ भारतेन्दु काल में हो गया था।

17.5 कठिन शब्दावली

अनुसरण - पीछे चलना

अनुपम - अनूठा

उद्‌घाटन - खोलना

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. श्रद्धा राम फुल्लौरी
2. लाला श्री निवास दास
3. परीक्षा गुरु

17.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत

17.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1. हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव एवं विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

प्र.2. प्रेमचंद युगीन सामाजिक चेतना पर विस्तारपूर्वक लिखिए।

प्र.3. प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यासों की विषय वस्तु क्या थी? विस्तारपूर्वक लिखिए।

*****

इकाई – 18
हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास

18.3.1 हिन्दी के प्रमुख कहानीकार एवं उनकी कहानियाँ

स्वयं आकलन प्रश्न

18.4 सारांश

18.5 शब्दार्थ

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.7 संदर्भित पुस्तकें

18.8 सात्रिक प्रश्न

18.1 भूमिका

इकाई सत्रह में हमने हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास का गहन अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास तथा हिन्दी के प्रमुख कहानीकार एवं उनकी कहानियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इकाई अठारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास कब हुआ?
2. हिन्दी के प्रमुख कहानीकार कौन–कौन हैं?
3. हिन्दी की प्रमुख कहानियों कौन सी है?
4. मनोवैज्ञानिक कहानियों की विशेषता क्या है?

18.3 हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास

हिंदी कहानी का जन्म हिंदी गद्य के साथ ही हो गया था। लेकिन खड़ी बोली गद्य को विकास प्रदान करने वाले फोर्ट विलियम कॉलेज से जुड़े लेखकों में इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' हिंदी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है। कुछ विद्वान सन् 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी विरचित 'इंदुमती' कहानी प्रकाशित हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''यदि 'इन्दुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की पहली मौलिक कहानी ठहरती है।'' उसके बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी का प्रकाशन सन् 1903 में हुआ। उनकी यह कहानी 'इन्दुमती' से श्रेष्ठ कही जा सकती है।

सन् 1907 में बंगमहिला कृत 'दुलाई वाली' कहानी का प्रकाशन हुआ। यह कहानी कथावस्तु, संवाद, भाषा शैली आदि की दृष्टि से पर्याप्त आधुनिकता लिए हुए है। कुछ विद्वानों ने इसे हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। सन् 1910 में मैथिलीशरण गुप्त कृत निन्यानवे का फेर कहानी का प्रकाशन हुआ। ये सभी कहानिया हिन्दी की आरम्भिक कहानिया हैं। इनमें आधुनिक कहानी के सभी तत्त्वों का सम्यक् समावेश नहीं हुआ है। सन् 1911 में इन्दु पत्रिका में जयशंकर प्रसाद विरचित 'ग्राम' कहानी का प्रकाशन हुआ। अधिकांश विद्वानों ने इसे हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी होने का सम्मान दिया। इस दिशा में प्रसाद का आगमन वरदान सिद्ध हुआ। आधुनिक हिन्दी कहानी के समुचित सूत्रपात में ही नहीं वरन विकास में भी उनकी कहानियों का योगदान उल्लेखनीय है।

18.3.1 हिन्दी के प्रमुख कहानीकार एवं उनकी कहानियां

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिंदी कहानी के प्रर्वतक माने जाते हैं। भावमूलक कहानियां लिखने में अत्यन्त सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियों के पांच संग्रह उपलब्ध होते हैं 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आंधी', 'इन्द्रजाल' और 'आकाशदीप'। भाव व्यंजना और शिल्प दोनों दृष्टि से इनकी कहानियां अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

प्रेमचन्द्र – प्रेमचन्द का आविर्भाव हिन्दी कहानी के विकास में एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रसाद यदि भावमूलक कहानी परम्परा के अधिष्ठाता है तो प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के।

प्रेमचन्द ने हिन्दी जगत को लगभग चार सौ कहानियां भेंट करके उसके भण्डार को समृद्ध बनाया है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारन्धा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'दो बैलों की कथा', 'बूढ़ी काकी', 'नशा', 'कफन' आदि नाम प्रमु हैं। जो 'मानसरोवर' नामक कहानी संग्रह में हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी – गुलेरी जी ने ''उसने कहा था', 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का कांटा' आदि कहानियों का सृजन किया। इनमें 'उसने कहा था' कहानी अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। इसे हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में स्थान दिया जाता है। यह हिन्दी कहानी साहित्य का 'माइल स्टोन' कहलाने की अधिकारिणी है।

सुदर्शन – प्रेमचन्द के समान सुदर्शन भी पहले उर्दू में कहानियां लिखा करते थे, उसके बाद हिन्दी की और आकर्षित हुए। इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रहों के नाम हैं– 'सुदर्शन सुमन', 'सुदर्शन–सुधा', 'तीर्थ यात्रा', 'सुप्रभात', 'नगीना'। हार की जीत इनकी प्रसिद्ध कहानी है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की है। इनके कहानी–संग्रह के नाम हैं – 'कला मन्दिर' और 'चित्रशाला'। कथ्य एवं शिल्प एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से ये प्रेमचन्द से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं।

हिन्दी – कहानी – जगत में एक नई शैली को लेकर आने वाले कहानीकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने प्रेमचन्द–परम्परा को एक नया मोड़ दिया। इनके नये कहानी–संग्रहों के नाम हैं– 'ऐसी होली खेलो लाल', 'यह कंचन–सी काया', 'काल कोठरी' आदि।

चतुरसेन शास्त्री 'उग्र' के समान चतुरसेन शास्त्री ने भी नग्न यथार्थवाद से प्रेरित होकर अनेक कहानियां लिखी हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियों में 'भिक्षुराज', 'दे खुदा की राह पर', 'ककड़ी की कीमत' आदि के नाम प्रसिद्ध है।

ऋषभचरण जैन, प्रेमचन्द युग के कथा–शिल्पकार है। इनकी प्रथम कहानी 'मिट्टी के रुपये' सन् 1925 में प्रकाशित हुई। उसके बाद इन्होनें 'दान', 'परख', 'अनासक्त', 'दुनियादारी', 'हड़ताल', आदि कहानियों का सृजन किया। इनकी कहानियों का अन्त बड़ा ही हृदयस्पर्शी होता है।

वृदावनलाल वर्मा की कहानियों को मुख्य रूप से दो भागों में बांट सकते हैं ऐतिहासिक एवं सामजिक। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के नाम हैं– 'कलाकार का दण्ड', 'शेरशाह का न्याय', 'सौन्दर्य प्रतियोगिता', 'शरणागत', 'अपनी बीती', 'मालिश' आदि।

प्रेमचन्द ने 'बूढ़ी काकी', 'मोटेराम शास्त्री' आदि हास्य–व्यंग्य–प्रधान कहानियाँ लिखकर जो परम्परा चलाई थी, जी.पी. श्रीवास्तव ने उसी को विकास प्रदान किया। इन्होंने 'पिकनिक', 'मैं न बोलूंगी', 'झूठमूट' आदि अनेक हास्य–व्यंग्य प्रधान कहानियों की रचना की है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानी कला पर शरतचन्द्र और प्रेमचन्द का प्रभाव लक्षित होता हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के नाम हैं– 'अंधेरी रात', 'हार जीत', 'इन्द्रजाल', 'मिठाईवाला', 'खाली बोतल', 'ट्रेन पर' आदि। इनकी कतिपय कहानियां मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

जैनेन्द्र कुमार प्रसाद एवं प्रेमचन्द के जैनेन्द्र कुमार प्रसाद एवं प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी को नयी दिशा देने वाली में जर्नन्द्र कुमार का नाम सर्वप्रमुख है। इनकी अधिकांश कहानियां मनोविश्लेषणात्मक है और उनमें वैयक्तिक चेतना

को विशेष प्रश्रय मिला है। उसकी के अनुरूप नया शिल्प भी उनकी कहानियों में दृष्टिगत होता है। इनके कहानी संग्रहों में 'एक रात', 'स्पर्धा', 'दो चिड़िया', 'वातायन', 'फांसी', 'पाजेब' आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इलाचन्द्र जोशी की कहानियां मुख्यत: मनोविश्लेषणात्मक है। इन पर फ्रायड के मनोविश्लेषण-शास्त्र का अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है। इनकी प्रतिनिधि कहानियों के नाम है 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'एक शराबी की आत्मकथा', 'रेल की रात', 'रोगी', 'चौथे विवाह की पत्नी' आदि।

हिन्दी में विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कहानियों की रचना करने वाले कहानीकारों में अज्ञेय का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस दिशा में ये जैनेन्द्र एवं जोशी से भी कुछ आगे बढ़ गए हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी - संग्रह हैं - 'विपथगा', 'परम्परा', 'जयदोल', 'कोठरी की बात' आदि।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित कहानीकारों में यशपाल सर्वप्रमुख हैं। इन्होंने अपनी दृष्टि व्यक्ति पर केन्द्रित न करके समाज पर केन्द्रित की है। इनके कहानी-संग्रहों में 'तर्क का तूफान', 'वो दुनिया', 'पिंजरे की उड़ान', फूलों का कुर्त्ता', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तराधिकारी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने मुख्यत: व्यंग्य-प्रधान सामाजिक कहानियों का सृजन किया है। इन्होंने निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग के यथार्थ जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। इनके कहानी-संग्रहों में 'पिंजरा', 'काले साहब', 'जुदाई की शाम का गीत', 'बैंगन का पौधा' आदि के नाम मुख्य हैं।

भगवतीचरण वर्मा का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रेमचन्द के निकट ले जाता है। ये मानव जीवन की गम्भीर स्थितियों, उच्च आदर्शों और नैतिकता को भी अपनी कहानियों में कलात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। इनके कहानी-संग्रहों के नाम हैं- 'खिलते फूल', 'दो बांके', 'इन्स्टालमेंट' आदि।

राहुल सांकृतयायन अपनी कहानियों में इतिहास और समाजवादी विचारधारा को विशेष महत्त्व देते हैं। उनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'बोल्गा से गंगा' है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार इनकी कहानियों में मानव जीवन के सुख-दु:ख, आशा-निराशा आदि के मनोभाव मुखरित हुए हैं। इनकी प्रतिनिधि कहानिया हैं- 'कामकाज', 'गुलाब', 'मै जरूर बचा लूंगा', 'मास्टर साहब' आदि।

हिन्दी कहानी के विकास में सियारामशरण गुप्त, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, महीप सिंह, हिमांशु जोशी, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, शैलेश मटियानी, रमेश बक्षी, फणीश्वरनाथ रेणु, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र अवस्थी, नरेन्द्र कोहली प्रभूति कहानीकारों का योगदान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

महिला कहानी - लेखिकाओं में सुभद्राकुमारी चौहान, शिवरानी देवी, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, शिवानी, उमा, प्रियंवदा, सत्यवती मलिक, सुधा सरोज, मीना गुलाटी, ममता मालिया, सुदर्शन रत्नाकर, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व, उसकी घुटन एवं मानसिक संघर्ष को अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. हिन्दी कहानी की वास्तविक शुरूआत किस युग से मानी जाती है।

प्र.2 'इन्दुमती' किसकी कहानी है।

प्र.3 हिन्दी की प्रथम कहानी किसे माना जाता है?

18.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कहानी का वास्तविक विकास द्विवेद्वी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती को कुछ विद्वान हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। प्राचीन कहानियाँ घटना प्रधान होती थी, जिस घटना के माध्यम से लेखक या वक्ता अपने उद्देश्य की पूर्ति करते थे। वर्तमान समय में कहानी एक सर्वप्रसिद्ध साहित्यिक विधा है।

18.5 कठिन शब्दावली

थति - धरोहर

अनमोल - जिसकी कोई कीमत न हो

बशर्त - शर्त सहित

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. द्विवेदी युग से
2. किशोरी लाल गोस्वामी
3. एक टोकरी भर मिट्टी

18.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. तारक नाथ बाली, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास

18.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 प्रसाद की कहानी कला की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3 कहानी के प्रमुख तत्व कौन से है? विस्तारपूर्वक लिखिए।

*****

इकाई – 19
हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

संरचना

19.1 भूमिका

19.2 उद्देश्य

19.3 हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

- भारतेन्दुयुगीन नाटककार
- प्रसादयुगीन नाटककार
- प्रसादोत्तर युगीन नाटककार

स्वयं आकलन प्रश्न

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

19.7 सदर्भित पुस्तकें

19.8 सात्रिक प्रश्न

19.1 भूमिका

इकाई अठारह में हमने हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास तथा हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों एवं उनकी रचनाओं का गहन अध्ययन किया है। इकाई उन्नीस में हम हिन्दी नाटक के उद्भव एवं विकास क्रम का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इकाई उन्नीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास कब हुआ?
2. भारतेन्दुयुगीन नाटककार कौन–कौन से है?
3. प्रसाद युगीन नाटक की प्रमुत्व विशेषता क्या है?
4. प्रसादोत्तर नाटक की विषयवस्तु क्या थी?

19.3 हिंदी नाटक का उद्भव एवं विकास

हिंदी नाटक परंपरा का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है फिर भी उनसे पूर्व मैथिली में विधा विलास, नल चरित, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण नामक नाटक लिखे जा चुके थे। इनके अतिरिक्त हनुमन्नाटक, समयसार, प्रबोध चंद्रोदय, शकुंतला नाटक, नहुष, आनंद रघुनंदन जैसे पद्यबद्ध नाटक भी लिखे जा चुके थे।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक गिरिधिरदास्कृते 'नहुष' को पहला मौलिक हिदी का नाटक मानते हैं तो शिवदान सिंह चौहान भारतेन्दु के प्रहसन 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति' को प्रथम मौलिक रचना मानते हैं।

उक्त विवादों में प्रथम नाटक का झगड़ा है किंतु यह निश्चित है कि भारतेन्दु के साथ ही हिंदी नाटक परंपरा चल पड़ी जिसका विकास इस प्रकार प्रस्तुत है।

● भारतेन्दु युगीन नाटककार –

इस युग के प्रतिनिधि नाटककार स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। सर्वप्रथम मौलिक नाटक माने जा सकते हैं। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला भाषा के नाटकों का विस्तृत अध्ययन किया और तत्कालीन रंगमंच की आवश्यकताओं को भी अच्छी तरह समझा था। उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों को भी प्रेरणा दी और नाटक–साहित्य को अधिकाधिक समृद्ध बनाने का स्तुत्य कार्य किया।

भारतेन्दु ने हिन्दी - जगत को 'सती प्रताप', 'नीलदेवी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'प्रेम योगिनी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटक प्रदान किए हैं। उन्होंने मौलिक नाटकों के सृजन के साथ-साथ संस्कृत, बंगला आदि के नाटकों का हिन्दी में अनुभव भी किया है। यथा- 'संस्कृत के 'कर्पूर मंजरी', 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' आदि नाटकों का और बंगाल के 'विद्यासुन्दर' नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया।

भारतेन्दु युग का नाटक-साहित्य जीवन के विविध क्षेत्रों में सामग्री लेकर चला है। उसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं का निरुपण हुआ है। भारतेन्दु के समकालीन नाटककारों में श्रीनिवास दास ने 'रणधीर, प्रेम, मोहिनी, 'प्रहलाद चरित', 'संयोगिता स्वयंवर' और 'तृप्ता संवरण' नामक चार नाटक लिखे हैं। पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'दमयन्ती स्वयंवर', 'जैसा काम वैसा परिणाम' और 'वेणु संहार' प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारत दुर्दशा रूपक', 'कलि कौतुक', 'गो संकट', 'हमीर हठ'। अम्बिका दत्त व्यास ने 'भारत सौभाग्य', 'देव पुरुष दृश्य', 'गो संकट' राधाकृष्ण दास में भारतेन्दु के 'सती प्रताप' नामक अधूरे नाटक को पूरा किया और कई मौलिक नाटकों की रचना भी की है। यथा- 'दु:खिनी बाला', 'महाराणा प्रताप', 'पद्मावती', 'धर्मालाप' आदि। बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'भारत सौभाग्य' 'वारागना रहस्य', 'वृद्ध विलाप'।

राधाचरण गोस्वामी ने 'सती चन्द्रवली', 'अमर सिंह राठौर', 'श्रीदामा', 'लोग देखे तमासेश, 'भंग-तरंग'। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'मयंक मंजरी', 'चौपट चपेट'। देवकीनन्दन त्रिपाठी ने 'सीता हरण', 'रुक्मिणी हरण', 'कंस वध', 'बाल विवाह', 'वेश्या विलास' आदि नाटकों का सृजन करके हिन्दी नाटक को विकास प्रदान किया है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग में हिन्दी नाटक का पर्याप्त विकास हुआ है। कथ्य की दृष्टि से वह राष्ट्रीय जागरण एवं नव-सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित है और शैली की दृष्टि से संस्कृत नाटकों की परम्परा से। नान्दी, पाठ, भरत वाक्य, अंकावतार आदि का प्रयोग इसी तथ्य का स्पष्ट द्योतक है। इन नाटकों की संवाद-योजना उपदेशात्मकता को प्रश्रय देती है और चरित्रों का व्यक्तित्व नाटककारों के निजी व्यक्तित्त्व को लिए हुए है। ये नाटक सरल, स्वाभाविक और पात्रानुकूल भाषा में निर्मित हुए हैं।

द्विवेदी युग- द्विवेदी युग में हिन्दी नाटक का अधिक विकास नहीं हुआ है। इसमें अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला नाटकों के अनुवाद अधिक हुए हैं।

द्विवेदी युग के नाटककारों में मौलिक नाटकों का निर्माण करने वालों में पं बदरीनाथ भट्ट, ने 'कुरुवन इहन', 'चंद्रगुप्त', 'तुलसीदास', 'दुर्गावती', 'वेन चरित्र', 'विवाह विज्ञापन'। पं. माधव ने 'महाभारत', लोचन शर्मा पांडे ने 'प्रेम प्रशंसा', माखनलाल चौधरी ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' और गोविंद वल्लभ पंत ने 'वरमाला' आदि नाटकों का सृजन निर्माण किया, जिनका साहित्यिक मूल्य आज भी शेष है।

● प्रसादयुगीन नाटककार –

जयशंकर प्रसाद का आगमन हिन्दी नाटक साहित्य युगान्तर से उपस्थित हुआ। ये हिन्दी के नाटक सम्राट हैं। इनके नाटको में पाश्चात्य और भारतीय नाट्यकला का सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने कुल 13 नाटकों की रचना की है। उनमें आठ ऐतिहासिक, तीन पैराणिक और दो भावात्मक नाटक है। इनके प्रसिद्ध नाटकों में नाम हैं 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्द गुप्त', 'अजात शत्रु', 'ध्रुव स्वामिनी', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'कागना', 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि।

इनके ऐतिहासिक नाटक गम्भीर ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर रचे गए हैं जिसमें राष्ट्रीय चेतना प्रधान है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारों ने भी हिन्दी नाटक के विकास में अच्छा सहयोग दिया है सुदर्शन ने 'अंजना' नामक एक पौराणिक नाटक की रचना की है। पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने 'महात्मा ईसा' और प्रेमचन्द ने 'कर्बला' जैसे ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। गोविन्द वल्लभ पंत ने 'वरमाला', एवं सृजन किया है। इनके अन्य नाटक हैं-

'अंगूर की बेटी', 'सिन्धू बिन्दी' आदि।

● **प्रसादोत्तर युगीन नाटककार –**

प्रसाद जी के उपरांत नाटककार हिन्दी-नाटक का विकास कई रूपों में हुआ। प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक, समस्यामूलक, गीत नाट्य, प्रतीक एवं रेडियो नाटक लिखे गये हैं। इस युग के मुख्य नाटककार हैं-

हरिकृष्ण ने ऐतिहासिक पौराणिक एवं रामाजिक नाटकों की रचना की है इनके अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं- 'प्रकाश स्तंभ', 'शिव साधना', 'रक्षाबंधन', 'विषपान', 'प्रतिशोध', 'आहुति कीर्तिस्तंभ', 'स्वप्नभंग' आदि। इन नाटकों में राष्ट्रीय भावनाओं की विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक नाटक हैं। इनके नाटक अभिनय योग्य हैं और उनकी भाषा पात्रानुसार है।

उदयशंकर भट्ट ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटक, भाव नाट्य एवं रेडियो रूपक लिखे हैं। इनके ऐतिहासिक नाटक हैं 'विक्रमादित्य', 'दाहर', 'मुक्तिपथ', 'शक-विजय', आदि। 'अम्बा', 'विश्वामित्र' 'सागर विजय' आदि इनके पौराणिक नाटक हैं। ये नाटक अपेक्षाकृत अधिक सफल हैं। 'राधा' इनका पाय नाट्य और 'मेघदूत' रेडियो रूपक है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने मुख्य रूप से समस्यामूलक नाटकों का सृजन किया है। इनका दृष्टिकोण बुद्धिजीवी हैं। इनके सामाजिक नाटक हैं- 'सन्यासी', 'सिन्दूर की होली', 'राक्षस का मन्दिर', मुक्ति का रहस्य आदि। इन्होंने 'वत्सराज', 'अशोक', 'दशाश्वमेष' आदि ऐतिहासिक नाटको की भी रचना की है।

सेठ गोविंददास ने सभी प्रकार के नाटको की रचना की हैं। इनके ऐतिहासिक नाटकों में- 'हर्ष', 'कुलीनता', 'शशि गुप्त' आदि। 'विकास', 'प्रकाश', 'सेवापथ' आदि नाटक समस्या प्रदान है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने सामाजिक एवं ऐतिहासिक, नाटकों का सृजन किया है। यथा- 'स्वर्ग की झलक', 'कैद और उड़ान', 'छटा बेटा', 'अलग-अलग रास्ते' आदि इनके सामाजिक नाटक हैं। 'जय पराजय' इनका अति प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र.1. हिन्दी नाटक का उद्भव कब से माना जाता है?

प्र.2. हिन्दी नाटक विकासक्रम को कितने भागों में बांटा गया है?

प्र.3 'चंद्रगुप्त' नाटक किस नाटककार द्वारा रचित है ?

19.4 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटक लिखने का विकास आधुनिक युग में हुआ। क्योंकि इससे पूर्व के हिन्दी नाटकों में नाट्यकला के तत्वों का अभाव है। इसमें अधिकतर नाटकीय काव्य है या संस्कृत नाटकों के अनुवाद। प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक' प्रबंधात्मक पद्य नाटक है। खड़ी बोली में लिखा गया महला नाटक या शिव प्रसाद सिंह का शकुंतला है, जो कालिदास के 'अभिज्ञान शंकुतलम' का हिन्दी अनुवाद है।

19.5 कठिन शब्दावली

उद्भव - प्रारंभ

विकास - व्यक्त करना

एकांकी - एक अंक वाला

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1850 ई.

2. 3 भागों में

3. 'चन्द्रगुप्त' जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित है।

19.7 संदर्भित पुस्तकें

1. हिन्दी नाटक : उद्भव विकास, डॉ. दशरत ओझा
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. श्री निवास शर्मा

19.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2. भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटकों की क्या विशेषताएं थी?

प्र. 3. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटककारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

*****

इकाई – 20
हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास

संरचना

20.1 भूमिका

20.2 उद्देश्य

20.3 हिन्दी निबन्ध का उद्भव एवं विकास

- भारतेन्दु युगीन निबंधकार
- द्विवेदी युगीन निबंधकार
- शुक्ल युगीन निबंधकार
- शुक्लोत्तर युगीन निबंधकार

स्वयं आकलन प्रश्न

20.4 सारांश

20.5 कठिन शब्दावली

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

20.7 संदर्भित पुस्तकें

20.8 सात्रिक प्रश्न

20.1 भूमिका

इकाई उन्नीस में हमने हिन्दी नाटक के उद्भव एवं विकास यात्रा का गहन अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में हम हिन्दी निबंध के उद्भव एवं विकास यात्रा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके साथ-साथ हम हिन्दी निबंध की प्रमुख विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे।

20.2 उद्देश्य

पाठ बीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. हिन्दी निबंध का उद्भव कैसे हुआ?
2. हिन्दी निबंध के विकासक्रम की यात्रा कैसी है?
3. भारतेन्दु युगीन प्रमुख निबंधकार कौन-कौन से है?
4. शुक्ल युगीन निबंध की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

20.3 हिंदी निबंध का उद्भव एवं विकास

साहित्य की कसौटी यदि गद्य है तो गद्य की कसौटी निबंध होता है। हिंदी निबंध का सूत्रपात भारतेन्दु युग से आरंभ होता है। भारतेन्दु ही हिंदी के प्रथम निबंधकार हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबंध विषय की व्यापकता, आत्मीयता, व्यंग्यात्मकता और सहृदयता से युक्त है। इनके निबंध अधविश्वासों, मिथ्या, परंपरा, सामाजिक-राजनैतिक असंगतियों पर करारा व्यंग्य करते हैं। बातचीत, दाँत, आंख, आंसू, कान आदि इनके निबंध हैं। भारतेन्दु को ही निबंध यात्रा का मूल बिंदु मानकर उसने विकास क्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

● भारतेन्दु युगीन निबंधकार – बालकृष्ण भट्ट ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की व्याख्यात्मक निबन्ध-शैली को विकसित किया। ये अपने समय के उत्कृष्ट निबन्धकार हैं। इन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका का सम्पादन किया। इनके निबन्ध सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और साहित्यिक विषयों पर लिखे गए हैं। 'भट्ट निबन्धावली' इनके निबन्धों का प्रसिद्ध संग्रह है।

प्रतापनारायण मिश्र स्वच्छन्द और मौजी प्रकृति के निबन्धकार हैं। इनके निबन्ध 'ब्राह्मण' पत्रिका में प्रकाशित होते थे। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं- 'प्रताप पीयूष', 'प्रताप समुच्चय' और 'निबन्ध-नवनीत'।

बालमुकुन्द गुप्त उर्दू क्षेत्र से हिन्दी में आए। इन्होंने 'भारतमित्र' पत्र में 'शिवशम्भु का चिट्ठा' नाम से अनेक निबंध लिखे। इनके निबन्ध अतीत प्रेम और राजनीतिक विचारों को प्रश्रय देते हैं।

● **द्विवेदी युगीन निबंधकार –** द्विवेदी युग के प्रवर्तक महाबीर प्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने पाश्चात्य लेखकों के ज्ञान को अर्जित करके अनेक निबन्धों का सृजन किया। इन्होंने लार्ड बेकन के निबन्धों का 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से अनुवाद किया। इन्होंने विचार प्रधान मौलिक निबन्धों की भी रचना की है और उनमें इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ है। 'साहित्य की महत्ता', 'कवि और कविता' आदि।

माधव प्रसाद मिश्र के 'माधवमिश्र निबन्ध माला' नाम से निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनके निबन्ध भावपूर्ण एवं सरस हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने कहानियों के समान निबन्ध भी बहुत कम लिखे हैं। किन्तु वे बड़े अनूठे हैं और समाज पर तीखे व्यंग्य करते हैं। इनके प्रसिद्ध निबन्धों 'के नाम हैं- 'कछुआ धर्म', 'पुरानी पगड़ी', 'मारेसि मोहि कुठांव' आदि।

भावनापूर्ण निबन्ध लिने में सरदार पूर्ण सिंह को बहुत सफलता मिली है। इनका दृष्टिकोण मानवतावादी है और इन्होंने 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता' आदि निबन्धों की रचना की है।

पद्मसिंह शर्मा के निबन्ध संग्रहों के नाम हैं- 'पद्म पराग', 'प्रबन्ध मंजरी' आदि। इनके निबन्ध फड़कती हुई भाषा के कारण बहुत आकर्षक है।

श्यामसुन्दर दास ने द्विवेदी युग में ही निबन्ध लिखने आरम्भ कर दिये थे। किन्तु इनकी कला का उत्कर्ष बाद में हुआ। इनके अधिकतर निबन्ध विचारात्मक हैं और उनमें साहित्य, कला आदि विषयों पर विचार किया गया है। इनके निबन्धों में समाज और 'साहित्य', 'कर्तव्य और सभ्यता', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं आदि निबन्ध प्रमुख हैं।

● **शुक्लयुगीन निबंधकार –** शुक्ल युग के प्रवर्तक आचार्य, रामचन्द्र शुक्ल हैं। ये हिन्दी निबन्ध-परम्परा में सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। इनके आगमन से हिन्दी निबन्ध को एक नई अनुभूति और नई भावाभिव्यक्ति शैली प्राप्त हुई। इनके निबन्ध मुख्यत: विचार-प्रधान हैं और उनमें विचारों की श्रृंखलाबद्ध एवं तर्कपूर्ण योजना होती है। विचारों की प्रौढ़ता के साथ उनमे शिष्ट हास्य एवं व्यंग्य का भी सुन्दर समावेश हुआ है। इनके निबन्धों को मुख्यत: दो भागों में विभक्त किया जा सकता है मनोभावों से सम्बन्धित निबन्ध और साहित्यिक निबन्ध। इनके निबन्ध 'चिंतामणि (दो भाग)' नाम से प्रकाशित हुए हैं।

बाबू गुलाबराय ने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, संस्मरणात्मक आदि सभी प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं 'मेरी असफलताएं।' 'फिर निराशा क्यों' आदि। इनके निबन्धों में अनुभूति की गहनता और शैली की सरलता मिलती है।

पदुमलाल मुन्नालाल बख्शी ने आलोचनात्मक एवं वैयक्तिक निबन्धों की रचना की है। इनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं- 'उत्सव', 'रामलाल पंडित', 'समाज सेवा', 'विज्ञान' आदि।

डॉ. रघुवीर सिह ऐतिहासिक संस्सारणात्मक लेखों के लिए अति प्रसिद्ध हैं। 'शेष स्मृतियाँ' इनके निबन्ध का प्रसिद्ध संग्रह है।

● **शुक्लोत्तरयुगीन निबंधकार –** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनके समकालीन लेखकों के उपरांत हिन्दी निबन्ध को विकास प्रदान करने में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध विषय की व्यापकता, विचारों की गौलिकता और शैली की रोचकता लिए हुए हैं। इनका दृष्टिकोण उदार है। 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क' आदि इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निबन्ध मुख्य रूप से साहित्यिक हैं। उनमें मौलिक चिंतन और पत्र-सम्पादक के व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।

डॉ. नगेन्द्र के निबन्धों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मौलिकता, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रोचकता और बाबू गुलाबराय की स्पष्टता मिलती है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं- 'विचार और विवेचन', 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण' आदि।

महादेवी वर्मा बाबू गुलाबराय के समान महादेवी वर्मा ने भी संस्मरणात्मक निबंध लिखे हैं। इनके निबन्धों में निजी अनुभूतियों और सामाजिक विषमताओं का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं - अतीत के चलचित्र, 'स्मृति की रेखाएं', श्रृंखला की कड़ियां' आदि।

रामधारी सिंह दिनकर के निबन्धों में इनका मानवतावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। 'मिट्टी की ओर', 'शुद्ध कविता की खोज', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'रेती के फूल' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी के निबन्धों में इनके घुमक्कड़ जीवन के अनुभव अभिव्यक्त हुए हैं। इनकी भाषा में ताजगी मिलती है। 'धरती गाती है', 'रेखाएं बोल उठी।' आदि इनके निबंध संग्रह हैं।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के निबन्धों मे व्यंग्य एवं भावुकता का सुन्दर समावेश मिलता है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं-

'जिन्दगी मुस्कराई', और 'बाजे पायलिया के घुंघरू'।

निबन्धों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित होने वाले विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में गहन अध्ययनशीलता एवं लोक संस्कृति का सहज सौन्दर्य मिलता है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं- 'तुम चंदन हम पानी', 'आंगन का पंछी और बनजारा मन'।

धर्मवीर भारती के निबन्धों में दार्शनिक चितन, व्यंग्य-विनोद और प्रभावशाली भाषा का सौन्दर्य मिलता है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम है 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी अनकहनी' आदि।

हरिशंकर परसाई के निबन्ध में सांस्कृतिक विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य मिलते हैं। 'सदाचार का तावीज', 'निठल्ले की डायरी' आदि इनके व्यंग्यात्मक निबन्ध संग्रह हैं।

शुक्लोत्तर युग के हिन्दी निबन्ध को समृद्ध बनाने में कई अन्य लेखकों का योगदान भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। उन लेखकों में जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, प्रभाकर माचवे, रांगेय राघव, नलिन विलोचन शर्मा, कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह, शरद जोशी और नरेन्द्र कोहली के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

प्र. 1. निबंध के कितने अंग होते हैं?

प्र. 2 हिन्दी साहित्य में 'निबंध' का उद्भव कब हुआ?

प्र. 3 अशोक के फूल किसका निबंध है?

20.4 सारांश

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबंध लिखने की परंपरा का आरंभ होता है। हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास हिन्दी उपन्यास तथा कहानी के समान निबंध भी पश्चिम की देन है। हिन्दी निबंध का विकास प्राय: अंग्रेजी निबंधों के आधार पर हुआ है। भारत्तेदु युग से लेकर हिंदी निबंध साहित्य निरंतर अग्र गति और निरंतर विकास की ओर अग्रसर होता रहा है।

20.5 कठिन शब्दावली

निबंध - बंधन

युगीन - चिरस्थायी

इरा - पृथ्वी

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. तीन अंग
2. 1580 ई. में
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

20.7 संदर्भित पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का संवेदनात्मक इतिहास चतुर्वेदी।
2. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां, डॉ. शिवकुमार शर्मा

20.8 सात्रिक प्रश्न

प्र.1. हिन्दी निबंध के उद्‌भव विकास पर प्रकाश डालिए।

प्र.2. शुक्लयुगीन निबंधकारों के निबंधों का परिचय दीजिए।

प्र.3. शुक्लोतर युगीन निबंधकारों की विशेषताएं का वर्णन करें।

*****

इकाई – 21
हिन्दी संस्मरण और रेखाचित्र का उद्भव एवं विकास

संरचना

21.1 भूमिका

21.2 उद्देश्य

21.3 हिंदी स्मरण का उद्भव एवं विकास

स्वयं आकलन प्रश्न – 1

21.4 हिन्दी रेखाचित्र का उद्भव एवं विकास

स्वयं आकलन प्रश्न – 2

21.5 सारांश

21.6 कठिन शब्दावली

21.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

21.8 सात्रिक प्रश्न

21.1 भूमिका

इकाई बीस में हमने हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में हम हिन्दी संस्मरण का उद्भव एवं विकास तथा हिंदी रेखाचित्र के उद्भव एवं विकास यात्रा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

21.2 उद्देश्य

इकाई इक्कीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. संस्मरण क्या है?
2. हिन्दी संस्मरण का उद्भव एवं विकास कैसे हुआ?
3. संस्मरण क्या है?
4. रेखाचित्र का विकास क्रम कैसे हुआ?

21.3 हिंदी संस्मरण का उद्भव एवं विकास

संस्मरण अंग्रेजी के. मैमॉयर्स के समानान्तर हिन्दी में प्रयुक्त होता है। यह गद्य साहित्य की एक आत्मनिष्ठ विधा कही जा सकती है। संस्मरण यथार्थ जीवन से सम्बद्ध, संक्षिप्त, रोचक, चित्ताकर्षक, भावुकतापूर्ण, लेखक के व्यक्तित्व की आभा से युक्त, चरित्र की गरिमा से मण्डित, 'सांकेतिक एवं प्रभावपूर्ण शैली में लिखित अविस्मरणीय घटना होने से गद्य साहित्य की एक स्वतन्त्र विधा है। जीवनी, तथा आत्मकथा में जीवन का आद्योपान्त सुसम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किया जाता है, पर संस्मरण में जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण क्षणों की, कुछ विशिष्ट घटनाओं की ही रोचक एवं कौतूहलमयी अभिव्यक्ति होती है, जिसका पाठक पर अमिट प्रभाव अंकित हो जाता है।

हिंदी संस्मरण – परम्परा के प्रारम्भिक उन्नायकों में पद्मसिंह शर्मा, राधिकारमण सिंह तथा श्रीराम शर्मा का नाम महत्त्वपूर्ण है। पद्मसिंह शर्मा संस्गरण परम्परा के आदि जनक हैं। इनके संस्मरण 'पद्म पराग' में संकलित हैं। ये संस्मरण लेखक के व्यक्तित्व की आभा से मण्डित हैं। राजा राधिकारमण सिंह के संस्मरण 'सावनी समाँ', 'वे और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि संग्रहों में संकलित हैं। श्रीराम शर्मा के संस्मरण 'शिकार', 'बोलती प्रतिमा' तथा 'सन् ब्यालीस को 'संस्मरण', 'प्राणों का सौदा' आदि रचनाओं में मिलते हैं। शर्माजी के शिकार सम्बन्धी संस्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संस्मरण-विधा के प्रतिष्ठापकों में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी तथा रामवृक्ष बेनीपुरी के नाम मूर्धन्य हैं। चतुर्वेदी की प्रमुत्व सस्मरण-कृतियाँ हैं 'हमारे आराध्य' तथा 'संस्मरण' में संजोया गया है। अनुभव को प्रौढ़ता तथा सघनता के कारण इनके सस्मरण बड़े ही मार्मिक बन पड़े हैं। इन संस्मरणों की भाषा बोलचाल के निकट तथा सहज सौन्दर्य से सम्पन्न है।

रामवृक्ष बेनीपुरी हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ संस्मरणकार हैं। 'माटी की मूरते।', 'मील के पत्थर', 'जंजीरें और दीवारें।' आदि रचनाओं में इन्होंने स्वानुभूतियों को अंकित किया है। पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन से सम्बद्ध इनके संस्मरण बड़े ही सजीव हैं।

हिन्दी संस्मरणकारों में महादेवी वर्मा का सर्वोपरि स्थान है। 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएं।', 'पथ के साथी', 'स्मृतिबिंब', 'स्मारिका' तथा 'मेरा परिवार में इनके संस्मरण संकलित हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के साहित्य की इस विधा में भी अनुपम देन है। 'बचपन की स्मृतियाँ', 'मेरे असहयोग के साथी' तथा 'जिनका में कृतज्ञ उनके तीन सस्मरण संग्रह हैं। इनके संस्मरणों में व्याप्त वैविध्य है। सांस्कृत्यायन की भांति भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने विविधोन्मुी संस्मरण लिखे हैं। 'जो न भूल सका' 'जो लिखना पड़ा' 'रेल का टिकट', 'देश की मिट्टी बुलाती है', 'एक गांव अनेक युग' आदि रचनाओं इनके संस्मरण संकलित हैं। 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' 'रचना में किशोरीदास वाजपेयी के संस्मरण प्राप्त होते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'वातायन' में रेखाचित्र एवं संस्मरण संकलित हैं। काका कालेलकर के संस्मरण 'संस्मरण यात्रा' में मिलते हैं। गुलाबराय की 'मेरी असफलताएं।'। माखनलाल चतुर्वेदी के संस्मरण 'समय के पांव' संगृहीत है। शान्तिप्रिय द्विवेदी के 'पथचिन्ह' तथा 'स्मृतियां और कृतिया' 'जानकीवल्लभशास्त्री की 'स्मृति के वातायन', रामनाथ सुमन की 'हमारे नेता' तथा क्षेमचन्द्र सुमन की 'जैसा हमने देखा' 'उल्लेखनीय संस्मरण हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी भावमय संस्मरण लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। 'कोटा अधिवेशन', 'क्या गोरी तथा क्या सांवरी' तथा 'रेखाएं बोल उठी' इनके संस्मरण-संग्रह हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का नाम उच्चकोटि के संस्मरण लेखकों में लिया जाता है। 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'भूल हुए चेहरे', 'दीप जले शंख बजे', 'जिन्दगी मुस्कराई', तथा 'माटी हो गई सोना' में इनके कई संस्मरण संगृहीत हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क के संस्मरण 'रेखाएँ और चित्र', 'मण्टो मेरा दुश्मन', 'परतों के आरपार' तथा 'याद अपनी कम परायी' संग्रहों में मिलते हैं। सेठ गोविन्ददास के संस्मरण 'स्मृतिकण' नाम से प्रकाशित हुए हैं। राधाकृष्णदास की 'जवाहर भाई', गंगाप्रसाद पाण्डेय की 'ये दृश्य : ये व्यक्ति भगवतशरण उपाध्याय की 'मैंने 'देखा', शिवपूजन सहायक की 'वे दिन वे लोग', सत्यवती मल्लिक की 'अमिट रेखाएं' भी उल्लेखनीय संस्मरण-रचनाएं हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचना, 'मृत्युजंय रवीन्द्रनाथ' में गुरुदेव रवीन्द्र से सम्बन्धित अनेक संस्मरण हैं। रामधारी सिंह दिनकर के संस्मरण 'वट-पीपल', 'लोकदेव नेहरू' तथा 'संस्मरण और श्रद्धाजलियां।' में संगृहीत हैं। हरिवंशराय बच्चन की उल्लेखनीय संस्मरण कृति है 'नये पुराने झरोखे'। इसमें आधुनिक साहित्यकारों से सम्बन्धित सुन्दर संस्मरण हैं। डॉ. नगेन्द्र के 'चेतना के विम्ब' में भाव भीने स्मृतिचित्र हैं। अमृतलाल नागर की 'जिनके साथ 'जिया' तथा जगदीश चन्द्र माधुरकृत 'दस तस्वीरें' तथा 'जिन्होंने जीना जाना' भी उल्लेखनीय कृतियां हैं। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के ग्राम्य जीवन के विविध पक्षों को साकार करने वाले संस्मरण 'क्षितिज के बिम्ब' में मिलते हैं। भवानीप्रसाद मिश्र ('जिन्होंने मुझे रचा') अज्ञेय ('स्मृतिलेख'), विष्णु प्रभाकर (मेरे अग्रज मेरे मीत), फणीश्वरनाथ रेणु (वन तुलसी की गंध) की संस्मरण रचनाएं भी इस विद्या में विशिष्ट स्थान रखती हैं। हिन्दी के संस्मरणकारों में तनसुखराम गुप्ता, डॉ. प्रभाकर माचवे. डॉ. रघुवंश विद्यानिवास मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवप्रसाद सिंह, सुधाकर पाण्डेय, डॉ. प्रेमशंकर, शिवानी, सत्यजीवन वर्मा, ओंकार शरद्, प्रेमनारायण टण्डन, महेन्द्र भटनागर, कुन्तल गोयल आदि के नाम गिने जा सकते हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न-1

प्र.-1 हिन्दी संस्मरण का उद्भव कब हुआ ?

प्र.-2 पदम पराग संस्करण के रचयिता कौन हैं ?

21.4 हिन्दी रेखाचित्र का उद्‌भव एवं विकास

ललित गद्य के अन्तर्गत रेखाचित्र भी एक नव्य विधा है। हिन्दी में रेखाचित्र के लिए 'व्यक्तिचित्र', 'शब्दचित्र' तथा 'चरितलेख' शब्द भी प्रयुक्त होते हैं, परन्तु इनमें से रेखाचित्र ही सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है। संस्मरण तथा रेखाचित्र अपेक्षाकृत एक दूसरे के सन्निकट गद्य विधाएं हैं। संस्मरण में मुख्यतया बीती हुई बातें याद की जाती हैं। उसमें भावात्मकता अधिक रहती है। सस्मरण में लेखन सर्वथा तटस्थ नहीं रहता। वह अपने 'स्व' का परित्याग नहीं करता। इसके विपरीत रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति के जीवन का उसके गुण-दोषमय व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत तटस्थ एवं निर्लिप्त होकर अंकन किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं। इसमें थोड़े-से शब्दों द्वारा संजीव रूपविधान तथा सफल अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है।

पद्मसिंह शर्मा के पद्मपराग से संस्मरण के साथ रेचित्र का भी आरम्भ माना जाता है, परन्तु कलात्मक एवं समीप रेखाचित्र द्विवेदी युग के बाद की ही रचनाओं में मिलते हैं। पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी से इस विधा का उन्नयन माना जाता है। चतुर्वेदीजी ने सैकड़ों रेखाचित्र लिखे हैं। इनके कई रेखाचित्र. पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रेस कोपाटकिन' (1940 ई), रेखाचित्र (1953 ई.), 'सेतुबंध' (1962 ई.) आदि इनके उल्लेखनीय संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त चतुर्वेदीजी के अनेक फुटकर रेखाचित्र पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं।

श्रीराम शर्मा के संस्मरणों के साथ-साथ रेचित्र भी प्रकाशित हुए हैं। 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव' तथा वे जीते कैसे हैं में इनके रेखाचित्र भी संगृहीत हैं। शर्मा जी की लेखनी उनके व्यक्तितव के समान निर्भीक एवं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र 'लालतारा', 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब' आदि संग्रहों में संकलित हैं। महादेवी वर्मा के संस्मरणों में रेखाचित्र की विशेषताएँ भी मिलती हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' भी रेखाचित्र की कोटि की रचनाएँ हैं। इन रेखाचित्रों में अनुभूति और भाषा का सुन्दर सामंजस्य है। आचार्य विनयमोहन शर्मा आलोचक के साथ रेखाचित्रकार भी हैं। इनके रेखाचित्र 'रेखा और रंग' नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनके रेखाचित्रों में प्रकृति-चित्रण बड़ा ही यथार्थ है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर हिन्दी के वरिष्ठ पत्रकार, संस्मरण लेखन तथा रेखाचित्रकार हैं। 'दीप जले शंख बजे', 'माटी हो गई सोना', 'महके आंगन चहके द्वार' में भी इनके कतिपय शब्दचित्र हैं। इनके रेखाचित्रों में आद्यन्त कथात्मक प्रवाह विद्यमान रहता है। श्रीमती सत्यवती मलिक के रेखाचित्र 'अमिट रेखाएं', 'अगर क्षण', तथा 'मानवरत्न' में संगृहीत है। विष्णु प्रभाकर के रेखाचित्रों में सामाजिक विसंगतियों का अंकन है। 'जाने अनजाने', 'अमिट रेखाएं' आदि इनकी कृतियां हैं। भगवतशरण उपाध्याय के रेखाचित्र 'ठूंठा आम' तथा ओंकार शरद के रेखाचित्र 'लंका नहराजित', 'स्वां साहब' तथा 'देशकार पात्र' आदि संग्रहों में संकलित हैं।

आधुनिक रेखाचित्रों में प्रकाशचन्द्र गुप्त विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका 'बच्चन' पर महत्वपूर्ण रेखाचित्र प्रकाशित हुआ था। 'रेखाचित्र', 'पुरानी स्मृतियाँ और ये स्कैच', 'विशाख', 'आज का हिन्दी साहित्य' आदि संग्रहों में इनके रेखाचित्र मिलते है। प्रकाशचन्द्र गुप्त में निर्जीव पदार्थों, वस्तुओं एवं स्थानों पर अनेक, संवेदनात्मक रेखाचित्र लिपिबद्ध किये हैं।' 'देहली दरवाजा' 'लेटरबाक्स', 'पीपल', 'पेट्रोल पम्प', 'खण्डहर', 'मिट्टी के पुतले', 'मसूरी' आदि रेखाचित्र अपनी सूक्ष्मता, विम्बात्मकता, भावप्रवणता, शब्दशिल्प आदि विशेषताओं के कारण बड़े ही प्रभावशाली बन पड़े हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ('विरामचिन्ह'), डॉ. नगेन्द्र ('चेतना के विम्ब'), प्रेमनारायण टण्डन ('रेखाचित्र'), डॉ प्रभाकर गाचवे, जयनाथ नलिन ('शतरंज के मोहरे') सेठ आदि लेखकों ने भी इस विधा में रचनाएं की हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न-2

प्र. 1 हिन्दी रेखाचित्र का उद्‌भव कब हुआ?

प्र. 2 रेखाचित्र का अंग्रेजी पर्याय क्या है?

21.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में संस्मरण लेखन कार्य द्विवेदी युग से प्रारंभ हुआ। द्विवेदी जी की प्रेरणा से सरस्वती में अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन जीवन परिचयों या संस्मरणों में लेखक की आत्मानुभूति की प्रधानता रही है। उन्हें मात्र जीवनवृत नहीं कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में संस्मरणों का अभाव नहीं है। हिन्दी संस्मरणों के विकास में हिन्दी पत्रिकाओं का विशेष योगदान है।

21.6 कठिन शब्दावली

संस्मरण - बार-बार याद करना

रेखाचित्र - आरेखण

संदर्भ - रचना, बनावट

21.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 के उत्तर

1. उत्तर - 1907 ई.
2. उत्तर - पदम् सिंह शर्मा

अभ्यास प्रश्न-2 के उत्तर

1. 1937 ई. में
2. 'स्केच'

21.8 संदर्भित पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास रामसन पाण्डेय
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. श्रीनिवास शर्मा

21.9 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी संस्मरण के उद्भव विकास का परिचय दीजिए।

प्र. 2 हिन्दी रेखाचित्र के उद्भव विकास पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3. रामवृज बेनीपुरी के रेखाचित्रों की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई – 22
हिन्दी जीवनी, आत्मकथा और रिपोर्ताज

संरचना

22.1 भूमिका

22.2 उद्देश्य

22.3 जीवनी का उद्भव एवं विकास

स्वयं आकलन प्रश्न – 1

22.4 हिन्दी आत्मकथा का उद्भव एवं विकास

स्वयं आकलन प्रश्न – 2

22.5 हिन्दी रिपोर्ताज का उद्भव एवं विकास

स्वयं आकलन प्रश्न – 3

22.6 सारांश

22.7 कठिन शब्दावली

22.8 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

22.9 संदर्भित पुस्तकें

22.10 सात्रिक प्रश्न

22.1 भूमिका

इकाई इक्कीस में हमने हिन्दी संस्मरण एवं रेखाचित्र का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। इकाई बाईस में हम हिन्दी आत्मकथा का उद्भव एवं विकास तथा हिन्दी रिपोर्ताज के उद्भव एवं विकास का गहन अध्ययन करेंगे। इसके साथ – साथ में हम हिन्दी जीवनी के उद्भव एवं विकास का भी अध्ययन करेंगे।

22.2 उद्देश्य

इकाई बाईस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. जीवनी का अर्थ एवं परिभाषाएं क्या है?
2. जीवनी का उद्भव एवं विकास कैसे हुआ?
3. हिन्दी आत्मकथा का उद्भव एवं विकास हुआ?
4. रिपोर्ताज का उद्भव कैसे हुआ?

22.3 हिन्दी जीवनी का एवं विकास

जीवनी आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण गद्य – विधा के रूप में मान्य है। कतिपय विद्वान् जीवनी को इतिहास का एक अंग अथवा शैली मात्र मानते हैं, परन्तु इसके कलात्मक एवं साहित्यिक मूल्यों को देखते हुए अन्य समीक्षकों ने इसे साहित्य की ललित विधा स्वीकार किया है। उपन्यास, कहानी आदि अन्य विधाओं में भी जीवन की व्याख्या तो होती है, पर वह परोक्ष अथवा कल्पनामिश्रित रहती है। जीवनी में किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के अन्तर्बाह्य स्वरूप का यथार्थ घटनाओं के आधार पर कलात्मक चित्रण रहता है। उसके गुण – दोषमय व्यक्तित्व की सजीव अभिव्यक्ति होती है।

आधुनिक युग में गद्य विधाओं के समान जीवनी साहित्य का आविर्भाव भी भारतेन्दु युग में ही हुआ। मध्ययुग मे सन्तों एवं भक्तों के जीवन – वृत्त अवश्य लिपिबद्ध हुए हैं, परन्तु उसमें साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण का ही प्राधान्य रहा है। 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि इसी प्रकार की कृतियां है। आधुनिक

युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समसामयिक साहित्यकारों ने जीवनीपरक रचनाएं लिखी हैं। रतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित अनेक महापुरुषों के जीवनचरित 'चरितावली', 'बादशाह दर्पण', 'बूंदी का राजवंश' आदि रचनाओं में संकलित है। इस युग के अन्य जीवनी लेखकों में कार्तिक प्रसाद स्वत्री ('मीराबाई का जीवन चरित्र), राधाकृष्णदास ('सूरदास') प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, देवीप्रसाद मुसिफ आदि के 'जीवनी लेखन-सम्बन्धी प्रयत्न सराहनीय है। देवी प्रसाद मुसिफ भारतेन्दु युग के उल्लेखनीय जीवनीकार हैं। इन्होंने कई इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन चरित लिखे हैं, जिनमें 'राजा मालदेव का जीवन चरित्र', 'उदयसिंह महाराजा', 'अकबरनामा', 'जसवतसिंह' आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं।

द्विवेदी युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'प्राचीन पण्डित और कवि', 'सुकवि संकीर्तन', 'चरितचर्चा' आदि रचनाओं में कई जीवनिया प्रदान की हैं। पण्डित बनारसीदास द्वारा लिखित 'सत्यनारायण कविरत्न' तथा 'भारतभक्त एण्डरूज' नामक जीवनियां हिन्दी जीवनी साहित्य में उल्लेखनीय है। सीताराम चतुर्वेदी ('महागना मालवीय की जीवनी'), सत्यदेव विद्यालंकार ('हमारे राष्ट्रपति', 'स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी'), घनश्यामदास बिड़ला ('बापू'), रामवृक्ष बेनीपुरी ('विप्लमी जयप्रकाश'), बलदेव उपाध्याय ('शंकराचार्य'), मन्मथनाथ गुप्त ('चन्द्रशेखर आजाद') आदि जीवनी लेखकों की जीवनी रचनाएं महत्वपूर्ण हैं। जीवनी-साहित्य में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की देन सर्वाधिक श्लाघनीय है। 'घुमक्कड़ स्वामी', 'सरदार पृथ्वीसिंह', 'कप्तान लाल', 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन', 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली', 'स्तालिन' 'लेनिन' 'कार्ल मार्क्स', 'माओचे-तुग' आदि इनकी जीवनीपरक रचनाएँ है।

आधुनिक युग में समाज-सुधारकों, सांस्कृतिक, धार्मिक विभूतियों, राजनीतिक नेताओं एवं विदेशी महापुरुषों की जीवनियां लिखी गई हैं। सन्त-महात्माओं की जीवनियों में भदन्त आनन्द कौसल्याप्सनकृत 'भगवान् बुद्ध', रामनारायण मिश्रकृत्त 'महात्मा ईसा', सुन्दरलालकृत 'हजरत दीनदयाल उपाध्यायकृत जगतगुरु शंकराचार्य', मन्मथनाथ गुप्त रचित 'गुरुनानक', बलदेव उपाध्यायकृत 'शंकराचार्य' आदि कृतियां महत्त्वपूर्ण हैं।

ऐतिहासिक चरित्रों से सम्बन्धी जीवनियों में 'छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित्र' (कार्तिक प्रसाद), 'पृथ्वीराज चौहान', 'बलदेव प्रसाद मिश्र), महाराणा प्रतापसिंह (देवी प्रसाद), 'सम्राट हर्षवर्धन', 'सम्राट अशोक', 'महाराजा छत्रसाल', 'अकबर', 'हुमायूँ', 'रणजीत सिंह', 'चेतसिंह और 'काशी का विद्रोह', (सम्पूर्णानन्द) पृथ्वीराज चौहान (रामनरेश त्रिपाठी), 'दुर्गादास' (प्रेमचन्द), 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' (गंगाप्रसाद मेहता), 'महाराणा प्रतापसिंह (गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा), 'रणजीत सिंह' (सीताराम कोहली) आदि पठनीय है।

राजनीतिक महापुरुषों में महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी आदि की जीवनियां लिखी गई है। इसमें सो मुकुन्दीलाल वर्माकृत 'कर्मवीर गांधी', सम्पूर्णानन्द कृत 'धर्मवीर गांधी', रामचन्द्र वर्मा लिखित 'महात्मा गांधी', काका कालेलकरकृत 'बापू की झांकियां' तथा जैनेन्द्र कुमारकृत 'अकाल पुरुष गांधी' उल्लेखनीय हैं। 'जवाहरलाल 'नेहरू' (इन्द्र विद्यावाचस्पति), 'जवाहरलाल नेहरू' (गोपीनाथ दीक्षित) आदि जवाहरलाल से सम्बन्धित जीवनियां हैं। मन्मथनाथ गुप्तकृत 'चन्द्रशेखर आजाद' महादेव देवाई लिखित 'मौलाना अबुल कलाम आजाद', देवव्रत शास्त्रीकृत 'गणेश शंकर विद्यार्थी' तनसुखराम गुप्त लिखित 'लालबहादुर शास्त्री महाप्रयाण' आदि जीवनियां भी सुन्दर एवं पठनीय हैं। विदेशी महापुरुषों की जीवन-गाथा को आधार बनाकर लिखी गई जीवनियां हिन्दी में कम ही लिखी गई हैं। इस क्षेत्र में महापण्डित राहुल सांकृतयायन का कार्य सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उन्होंने रूस तथा चीन के मार्क्सवादी साम्यवादी नेताओं की जीवनियां लिखी हैं। इस दिशा की कुछ अन्य उल्लेख कृतियां हैं- 'महात्मा सुकरात' (बेनीप्रसाद), 'महात्मा लेनिन' (सदानन्द भारती) 'मि. चर्चिल' (अनन्त प्रसाद विद्यार्थी), 'कार्ल मार्क्स' (रामवृक्ष बेनीपुरी) आदि।

देश-विदेश की महान महिलाओं से सम्बन्धित जीवनियां भी पर्याप्त मात्रा लिखी गई हैं। रानी भवानी (गंगाप्रसाद गुप्त) 'रानी दुर्गावती' (सूर्यनारायण त्रिपाठी), 'वीरपत्नी संयोगिता' (यशोदा देवी), 'रमणी नवरत्न' (जगन्नाथ शर्मा) आदि पठनीय कृतियां हैं।

'साहित्यकारों से सम्बन्धित जीवनियां अनुसन्धान एवं आलोचनात्मक ग्रंथों में आई हैं। इनमें शिवरानी देवी लिखित 'प्रेमचन्द घर में' तथा अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही'। डॉ. रामविलास शर्माकृत 'निराला की साहित्य साधना' है। विष्णु प्रभाकर ने 'आवारा मसीहा' में शरत् के जीवन को लालित्यमयी शैली में अंकित किया है। गंगाप्रसाद पाण्डेयकृत 'महाप्राण 'निराला' मुख्य हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न – 1

प्र. 1. हिन्दी के प्रथम जीवनीकार कौन हैं ?

प्र. 2. जीवनी साहित्य का आविर्भाव कौन से युग में हुआ ?

23.4 हिन्दी आत्मकथा का उद्‌भव एवं विकास

आत्मकथा का लेखक जीवनी लेखक की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकारपूर्ण निजी ज्ञान से अभिव्यक्ति का कार्य करता है। इसमें लेखक व्यक्तिगत जीवन का निस्संकोच रूप से विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

हिन्दी में आत्मकथा साहित्य अभी विकासशील अवस्था में है। हिन्दी का प्राचीनतम आत्मचरित बनारसीदास जैन लिखित 'अर्द्धकथानक (1641 ई.) पद्यात्मक रचना है। इसके अतिरिक्त स्वामी दयानन्द लिखित 'जीवन चरित्र' इस विधा की आरम्भिक रचनाएं हैं। भाई रमानन्द लिखित 'आपबीती' (1921 ई.) प्रथम महत्त्वपूर्ण मौलिक आत्मकथा कही जा सकती हैं।

छायावाद और उसके परवर्ती युग में आत्मकथापरक साहित्य विकसित एवं समृद्ध हुआ है। भवानीदयाल संन्यासीकृत 'प्रवासी की आत्मकथा'। सत्यदेव परिव्राजक की यात्रापरक आत्मकथा 'स्वतन्त्रता की खोज' राजारामकृत 'मेरी कहानी' श्रद्धानन्द द्वारा लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक', हरिभाऊकृत 'साथ ना के पथ पर' तथा रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा (सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी) भी महत्त्वपूर्ण आत्मकथात्मक कृतियाँ हैं।

हिन्दी के कतिपय लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारो ने भी आत्मकथाएं लिखी हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास रचित 'मेरी आत्मकहानी' (1941 ई) में उनकी साहित्य-साधना का वर्णन है। महापण्डित राहुल सांकृतयायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' (पाँच भाग) यायावर-साहित्यकार की आत्मकथा हैं और इसमें लेखक के जीवन के मधुर-कटु अनुभवों का है। वियोगी हरि को आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' में प्रमुख रूप से उनके समाज सेवी रूप का रूप अंकन है। यशपाल की आत्मकथा 'सिंहावलोकन' में उनके क्रान्तिकारी जीवन की झलक मिलती है। शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'परिव्राजक की प्रजा' सस्मरणात्मक शैली की सुन्दर आत्मकथापरक कृति है। सुमित्रानन्दन पन्त की 'साठ वर्ष : एक रेखांकन', इन्द्र विद्यावाचस्पति की 'मेरी जीवन-झांकियां, सेठ गोविन्ददास कृत श्आत्मनिरीक्षणश, श्पडुमलाल पुन्नालाल बत्शी की श्मेरी अपनी कथाश, पाण्डेय बेचन शर्मा श्उग्रश की श्अपनी स्वबरश, चतुरसेन शास्त्री की 'मेरी आत्मकहानी' तथा 'निराला की आत्मकथा' (सम्पादक डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित) आदि अन्य महत्त्वपूर्ण आत्मकथा विषय रचनाएं हैं।' देवेन्द्र सत्यार्थी की 'चाँद सूरज के वीरन' भी एक रोचक आत्मकथा है। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा इस दिशा में विशिष्ट स्थान रखती है। 'क्या भूलू क्या याद करूँ', 'नोड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', 'दशद्वार से सोपान तक' चार भागों में बच्चन में अपने जीवन-वृत्त को संस्मरणात्मक एवं ललित रूप में प्रस्तुत किया है। रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर है समय' रामविलास शर्माकृत 'अपनी धरती अपने लोग' भी आत्मकथा-साहित्य की विशिष्ट कृतिया हैं। रमेश बक्षी की 'सूरज में लगा धब्बा' यशपाल जैन की 'मेरी जीवनधारा' भी उल्लेखनीय आत्मकथाए हैं। 'अर्धसत्य' नाम से डॉ. नगेन्द्र की आत्मकथा पर्याप्त चर्चित रही है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न – 2

प्र. 1 'अर्द्धकक्षानक' आत्मकथा किसके द्वारा रचित है?

प्र. 2 हिन्दी की प्रथम मौलिक आत्मकथा किसे माना जाता है ?

22.5 हिन्दी रिपोर्ताज का उद्‌भव एवं विकास

रिपोर्ताज हिन्दी गद्य की नव्यतम विधा है। यह फ्रांसीसी भाषा शब्द है लेकिन इसमें मूल में अंग्रेजी का 'रिपोर्ट' (Report) शब्द है। अर्थात् इस विधा में आँखों देखी किसी विशिष्ट घटना को आधार बनाकर कल्पना के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

हिंदी साहित्य के कलेवर में इस विधा के सर्वप्रथम लेखक शिवदान सिंह चौहान कहलाते हैं उनका 'लक्ष्मीपुरा' नामक रिपोर्ताज दिसम्बर 1938 में 'रूपाभ' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। राधेय राघव सशक्त रिपोर्ताज लेखक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने अदृश्य जीवन, विषाद मठ, तूफानों के बीच, उपचेतना का तांडव, यह ग्वालियर है मुख्य रिपोर्ताज है। बंगाल के अकाल पर लिखा इनका रिपोर्ताज विशिष्ट है।

इनके अतिरिक्त अन्य रिपोताज लेखकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त 'बंगाल का अकाल', अल्मोडे का बाजार, स्वराज्य भवन) भगवतशरण उपाध्याय (खून के छींटे), उपेन्द्रनाथ अश्क (पहाड़ों में प्रेममय संगीत) अमृतलाल नायर (गदर के फूल) भदन्त आनन्द कौसल्यायन (देश की मिट्टी बुलाती है), धर्मवीर भारती (युद्धयात्रा), शिवसागर मिश्र (वेलडंग हजार साल) कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (क्षण बोले कण मुस्कराये), शमशेर बहादुर सिंह (प्लाट का मोर्चा) विश्वप्रसाद सिह (मेरे साक्षात्कार) सत्यकाम विद्यालंकार विवेकीराज, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, कमलेश्वर जगदीश चतुर्वेदी मुख्य रिपोर्ताज लेखक हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न – 3

प्र. 1 हिन्दी में रिपोर्ताज का जनक किसे माना जाता है?

प्र. 2 आंखों देखी घटना को कल्पना द्वारा प्रस्तुत करना क्या कहलाता है?

22.6 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अन्य विधाओं की भांति आत्मकथा एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसमे रचनाकार आत्मावलोकन करते हुए स्वयं एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसमें रचनाकार आत्मावलोकन करते हुए स्वयं अपने जीवन का मूल्यांकन करता है। आत्मकथा लेखक के भोगे हुए जीवन का स्वयं किया गया विवेचन एवं विश्लेषण है। इसमें रोचकता एवं प्रामाणिकता भी होती है।

22.7 कठिन शब्दावली

प्रवृत्ति - स्वभाव

गूँज - गुंजन

संयोजित - मिलाया हुआ

22.8 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 के उत्तर

1. गोपाल शर्मा शास्त्री
2. भारतेन्दु युग

अभ्यास प्रश्न – 2 के उत्तर

1. बनारसी दास
2. आपबीती

अभ्यास प्रश्न – 3 के उत्तर

1. शिवदान सिंह चौहान
2. रिपोर्ताज

22.9 संदर्भित पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र

22.10 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी साहित्य में 'जीवनी' विधा के उद्‌भव विकास पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2. हिन्दी में प्रमुख आत्मकथाकारों का वर्णन करें।

प्र. 3. हिन्दी के प्रमुख रिपोर्ताज ग्रंथों का वर्णन कीजिए।

*****

इकाई – 23
हिन्दी आलोचना का उद्‌भव एवं एवं विकास

संरचना

23.1 भूमिका

23.2 उद्देश्य

23.2 हिन्दी आलोचना का उद्‌भव एवं विकास

- भारतेन्दु युगीन आलोचना
- द्विवेदी युगीन आलोचना
- शुक्ल युगीन आलोचना
- शुक्लोत्तर युगीन आलोचना

स्वयं आकलन प्रश्न

23.4 सारांश

23.5 कठिन शब्दावली

23.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

23.7 संदर्भित पुस्तकें

23.8 सात्रिक प्रश्न

23.1 भूमिका

इकाई बाईस में हमने हिन्दी जीवनी एवं आत्मकथा का गहन अध्ययन किया। इकाई तेईस में हम हिन्दी आलोचना का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। इसके अन्तर्गत हम भारतेन्दु युगीन हिन्दी आलोचना, द्विवेदी युगीन आलोचना, शुक्लयुगीन हिन्दी आलोचना का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

23.2 उद्देश्य

इकाई तेईस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. हिन्दी आलोचना का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ?
2. भारतेन्दु युगीन हिन्दी आलोचना की प्रमुख विशेषता क्या है?
3. द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना कौन–कौन है?
4. शुक्ल युगीन हिन्दी आलोचनक कौन–कौन है?

23.3 हिंदी आलोचना का उद्‌भव एवं विकास

'वर्तमान युग में 'आलोचना' नामक विधा का तीव्र गति से विकास हुआ है। आलोचना का वास्तविक उद्‌भव संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा में मिलता है, किंतु हिंदी में भारतेन्दु युग से ही हिंदी आलोचना का सूत्रपात मिलता है। भारतेन्दु ने 'नाटक' नामक सर्वप्रथम आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा। हिंदी आलोचना के विकास को निम्न सोपानों द्वारा समझा जा सकता है।

- **भारतेन्दुयुगीन आलोचना –** भारतेन्दु युग में हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' मुख्य रूप से आलोचना का कर्म करते रहे भट्ट ने अपने पत्र 'हिन्दी–प्रदीप' में 'सच्ची आलोचना' नाम से 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना की। बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन ने 'कविवचन सुधा' और 'आनन्द कादम्बिनी' में टिप्पणियों के रूप में कई पुस्तकों की आलोचना की।

• द्विवेदीयुगीन आलोचना – द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन से हिन्दी आलोचना को एक नवीन प्रेरणा मिली। 'सरस्वती' का सम्पादक बनने से पहले, इन्होंने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र में आलोचनात्मक लेखमाला प्रकाशित करानी आरम्भ कर दी थी। आचार्य द्विवेदी एक महान आलोचक थे और इन्होंने हिन्दी के गुणदोषात्मक आलोचना पद्धति का आरम्भ किया और 'कालिदास की निरंकुशता', 'नैवध चरित चर्चा', विक्रमांक देवचरित चर्चा जैसे आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे।

मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी–नवरत्न नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ की रचना की और इसमें हिन्दी प्रमुख नौ कलाकारों पर विचार किया। रीतिकालीन कवि देव और बिहारी में से देव को बड़ा सिद्ध किया। इनकी आलोचना–शैली शास्त्रीय एवं तुलनात्मक है।

प. पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी सतसई की भूमिका माध्यम से बिहारी के काव्य सौष्ठव का उघ्द्घाटन किया और उन्हें देव से श्रेष्ठ सिद्ध किया।

कृष्ण बिहारी मिश्र कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नामक पुस्तक लिखकर इन दोनों कवियों की संयंत तुलना की और देव को बिहारी से श्रेष्ठ सिद्ध किया।

लाला भगवान दीन की आलोचनात्मक कृति 'देव और बिहारी' है और इसमें इन्होंने कृष्ण बिहारी मिश्र के आक्षेपों का उत्तर देते हुए, बिहारी को देव से श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में बाबु श्यामसुन्दर दास ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इन्होंने 'साहित्यालोचन', 'रूपक रहस्य' एवं 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक आलोचनात्मक पुस्तके लिखीं।

• शुक्ल युगीन आलोचना – शुक्ल युग के सर्वश्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हैं। इन्होंने हिन्दी आलोचना को नवीन दिशाएं प्रदान की हैं। इनकी सैद्धान्तिक एवं व्याख्यात्मक आलोचना में मौलिक प्रतिभा और गम्भीर विवेचना–शैली का सौष्ठव मिलता है। इन्होंने सूर, तुलसी और जायसी पर गम्भीर एवं विस्तृत आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने 'कविता क्या है' 'काव्यात्मक लोकवाद', 'रसात्मक बोध के विविध प्रकार' आदि आलोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं।

शुक्ल युग के अन्य आलोचको मे पं. विश्वनाथ प्रमाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, रामकृष्ण शुक्ल, गिलीमुख, चन्द्रबली पाण्डेय, रमाशंकर शुक्ल रसाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने सामान्यत: शुक्ल जी का ही अनुसरण कथा है। किंतु उनके नैतिकतावादी पक्ष को उस रूप में नहीं अपनाया है।

• शुक्लोत्तरयुगीन आलोचना – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा छायावादी काव्य का सम्यक मूल्यांकन न होने से इस काव्यधारा के कवियों प्रसाद, पत, निराला और महादेवी ने अपनी रचनाओं की भूमिकाओं में छायावादी काव्य की अन्तदृष्टि और उसके सौन्दर्य का स्वयं विश्लेषण किया। उसी से प्रभावित होकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, द्विवेदी एवं डॉ. नगेन्द्र ने छायावादी कविता के स्वरूप को स्पष्ट किया है। इस युग की हिन्दी आलोचना को विकास प्रदान करने में अनेक शोध–ग्रन्थों की भूमिका भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही है।

शुक्लोत्तर पक्ष के प्रमुख आलोचकों में हजारीप्रसाद, मानवतावादी, समाजशास्त्रीय पद्धति के आलोचक हैं। इनके आलोचात्मक ग्रंथों के नाम हैं–'कबीर', 'सूर साहित्य', 'नाथ संप्रदाय', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' आदि शामिल हैं। इनकी आलोचना–पद्धति में सरसत्ता, व्यंग्यात्मकता और प्रौढ़ता मिलती है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी समन्वयवादी एवं सौंदर्यवादी आलोचक हैं। इन्होंने हिन्दी–जगत को कई आलोचनात्मक ग्रन्थ भेंट किए हैं 'रीतिकाव्य की भूमिका', 'साकेत : एक 'अध्ययन' 'विचार और विश्लेषण', 'रस सिद्धांत' आदि। ये रसवादी एवं सौन्दर्यवादी आलोचक हैं। इन्होंने मनोविश्लेषण पद्धति को भी ग्रहण किया है। इनकी आलोचना–पद्धति में मौलिकता, अध्ययनशीलता और बौद्धिकता का सुन्दर रूप देखने को मिलता है।

शुक्लोत्तर युग में मुख्यत: स्वच्छंदतावादी मानवतावादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी और सैद्धांतिक आलोचना–पद्धति का विकास हुआ है।

स्वच्छन्दतावादी आलोचना पद्धति जिसे सौन्दर्यवादी आलोचना भी कह सकते हैं और यह पश्चिमी रोमांटिक समीक्षा का भारतीय रूप है। इस आलोचना-पद्धति के आलोचकों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी डॉ. रामकुमार वर्मा, शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज आदि के नाम उल्लेखनीय है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर और पशुराम चतुर्वेदी में मानवतावादी समाजशास्त्री आलोचना-पद्धति को विशेष महत्त्व दिया है।

मार्क्सवादी आलोचना पद्धति ने आलोचक साहित्य और जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं और मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के आधार पर साहित्य की आलोचना करते है। इस प्रकार के आलोचकों ने डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान प्रकाशचन्द्र गुप्त डॉ. रांगेय राघव, अमृतराय और डॉ. नामवर सिंह के नाम प्रमुख हैं।

मनोविश्लेषणात्मक आलोचना पद्धति पर फायड एडलर एवं युग के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों का बहुत प्रभाव पड़ा है। इलाचन्द्र जोशी इस आलोचना पद्धति के सर्वाधिक क्रियाशील आलोचक हैं।

सैद्धांतिक आलोचना पद्धति को डॉ. नगेन्द्र रामकुमार वर्मा, भगीरथ मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद शर्मा आदि आलोचकों ने विकास प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रयोगवादी आलोचना पद्धति के प्रमुख आलोचक हैं अज्ञेय, निरिजा कुमार माथुर, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि। इन्होंने नये समीक्षा सिद्धातों को प्रश्रय दिया है।

इस प्रकार हिन्दी आलोचना का बडी तीव्र गति से विकास हुआ है।

स्वयं आकलन प्रश्न

1. 'हिन्दी नवरत्न' नामक आलोचनात्मक पुस्तक के लेखक कौन है?
2. 'मनोविश्लेषणवादी' आलोचना पर सर्वाधिक प्रभाव किसका है?
3. मार्क्सवादी आलोचक किसमें घनिष्ठ संबंध मानते है?

23.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का विकास हुआ। जिनमें कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण तथा आलोचना इत्यादि प्रमुख है। इन विधाओं ने हिन्दी को काफी समृद्ध व उन्नति प्रदान की।

23.5 कठिन शब्दावली

आलोचना - गुण दोष निरूपक्ष या विवचेन करना।

यथार्थ - जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा, वाजिव, उचित

पृथ्वी - धरती, जमीन, स्थल।

सैद्धान्तिक - निश्चित, मूल, उसूल, पक्की राय

23.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. मिश्रबंधु
2. फ्रायड एडलर एवं युग
3. साहित्य और जीवन

23.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, ने.प.हा. दिल्ली।
2. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, का.ना.प्र.से. वाराणसी दिल्ली।
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना।

4. हजारीप्रसाद रेस्तरां, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, भारतेन्दु भवन इलाहाबाद।
6. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
7. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-1 और 2) वाणी वितान, वाराणसी।
8. रामसजन पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, ल.ए.हा. रोहतक
9. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां अशोक प्रकाशन दिल्ली।
10. डॉ. श्रीनिवास शर्मा, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन दिल्ली।
11. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य का संवेदनात्मक इतिहास: दिल्ली।

23.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 आलोचना का अर्थ एवं परिभाषा देते हुए शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि पर प्रकाश डाले।

प्र. 2 हिन्दी के प्रमुख मार्क्सवादी आलोचक कौन-कौन है? उनकी साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3 मनोविश्लेषवादी आलोचकों पर फायड एडलर एवं युग का प्रभाव है, सिद्ध कीजिए।

*****

एम.ए. हिन्दी
द्वितीय सत्र

कोर्स कोड : MNIN-202
प्रश्न पत्र-6

हिन्दी साहित्य का इतिहास
(आधुनिक काल)

इकाई 1 से 23

लेखकः ऊषा रानी

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र हिमाचल प्रदेश
विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ समरहिल, शिमला-05

विषयानुक्रम

क्रम	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	आधुनिककालीन पृष्ठभूमि एवं नवजागरण	2
2.	सन् 1857 की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण	11
3.	भारतेंदुयुगीन प्रमुख साहित्यकार	18
4.	भारतेंदुयुगीन साहित्यिक विशेषताएं	25
5.	द्विवेदी युग : प्रमुख साहित्यकार	33
6.	द्विवेदी युग की प्रमुख साहित्यिक विशेषताएं	40
7.	हिन्दी स्वच्छंदतावादी चेतना का अग्रिम विकास	48
8.	छायावाद युगीन साहित्यकार एवं उनकी रचनाएं	55
9.	छायावादी काव्यधारा और उसके रूप	62
10.	उत्तरछायावादी काव्य	70
11.	उत्तर छायावादी काव्य की विविध प्रवृत्तियां	75
12.	प्रगतिवाद के प्रमुख कवि	82
13.	प्रयोगवादी काव्य और उसकी विशेषताएं	87
14.	प्रयोगवाद के प्रमुख कवि	92
15.	नई कविता और उसकी विशेषताएं	96
16.	नवगीत और उसकी विशेषताएं	100
17.	हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास	104
18.	हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास	108
19.	हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास	112
20.	हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास	116
21.	हिन्दी संस्मरण और रेखाचित्र का उद्भव एवं विकास	120
22.	हिन्दी जीवनी, आत्मकथा और रिपोर्ताज	124
23.	हिन्दी आलोचना का उद्भव एवं विकास	129